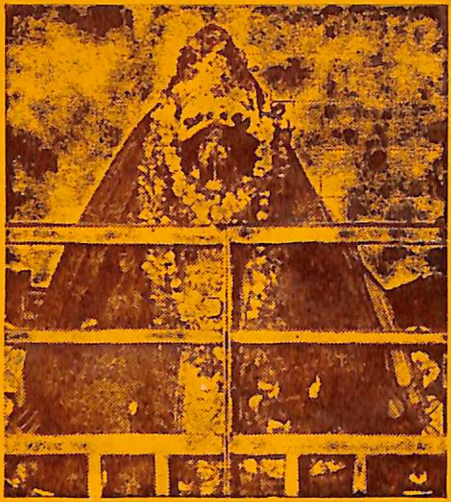

# श्रीतारा-कल्पतरु

भगवती तारा के विविध ध्यान, श्री तारा-स्वरूप-तत्त्व, श्रीतारा - माहात्म्य,
महा - विद्या तारा की साधना, श्रीतारा - तत्त्व - निरूपण,
भगवती तारा-साधना-क्रम, श्रीभक्ति-सर्वस्व श्रीतारा-सहस्रनाम-स्तोत्र
एवं
भगवती तारा के दुर्लभ हस्त-लिखित साहित्य का विवरण

प्रकाशक

पं॰ देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग-६

ka Tantra
ST

# श्रीतारा-कल्पतरु

सम्पादक

श्री ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

पं॰ देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग–6

प्रकाशक :
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग (उ. प्र.)–२११००६

प्रथम संस्करण

श्रावण-पूर्णिमा, २०४६ वि०–१३ अगस्त, १९९२

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : १५-०० रु०

मुद्रक :
परा-वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग २११००६–(उ. प्र.)

# अनुक्रमणिका


१ परिचय (पांच)

२ श्रीतारा चालीसा (सात)

३ श्रीतारा स्तोत्र १
'दश-महा-विद्या-सिद्ध' श्री सर्वानन्दनाथ द्वारा रचित

४ भगवती तारा के विविध ध्यान २
'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

५ श्रीतारा-स्वरूप-तत्त्व ६
'दरभङ्गा-राज-वंश-सम्भूत' श्री श्यामानन्द नाथ

६ श्रीतारा महा-विद्या २२
'राष्ट्र-गुरु' स्वामीजी महाराज, दतिया के निबन्ध के आधार पर

७ तारा-तत्त्व २३
परम पूज्य स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती के निबन्ध के आधार पर

८ भगवती तारिणी का विलक्षण स्वरूप २४
पं० दुर्गाशङ्कर मिश्र

९ मां तारा २५
'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित

१० श्रीतारा-माहात्म्य २६
पं० रघुवीर मिश्र, 'विशारद'

११ **श्रीतारा-देवी** ३२
श्री प्रभातकुमार बनर्जी

१२ **महा-विद्या तारा की साधना** ३३
'रुद्र-यामल' एवं 'ब्रह्म-यामल' की कथा

१३ **चीनाचार** ३६
'महा-विद्या' तारा की साधना का महत्त्व-पूर्ण अङ्ग : पं. शिवकुमार शर्मा

१४ **श्रीतारा तारिणी** ४०
हिन्दी कविता : 'कुलज्ञ' स्वामी श्री दिव्यानन्द जी सरस्वती

१५ **श्रीतारा-तत्त्व-निरूपण** ४१
'श्रीतारा-कर्पूर-स्तोत्र' की टीका एवं व्याख्या

१६ **तन्त्र-मार्ग की तारा-विद्या** ५७
प्रख्यात सिद्ध महात्मा वामा क्षेपा के उपदेशों के आधार पर

१७ **तारिणी-मन्त्र-रहस्य** ६०
गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर

१८ **साधना-क्रम** ६१
'कौल-कौस्तुभ' पण्डित शारदाप्रसाद मिश्र

१९ **श्री भक्ति-कुल-सर्वस्व श्रीतारा-सहस्र-नाम स्तोत्र** ६९
'श्रीतारा-भक्ति-सुधार्णव' से संग्रहीत

२० **ब्रह्म-तारा** ७६
पूज्य श्री स्वामी तारानन्द जी

२१ **भगवती तारा का दुर्लभ हस्त-लिखित साहित्य** ७७

# परिचय

'प्राण-तोषिणी तन्त्र' में 'तारा'-शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

**दश-गेहे च योत्पन्ना,** सती **नाम्नेति कीर्तिता । कैवल्य-दायिनी यस्मात्** तस्मादेक-जटा **स्मृता ।।**
**तारकत्वात् सदा** तारा, **लीलया वाक्-प्रदा यतः ।** नील - सरस्वती **प्रोक्ता, उग्रत्वादुग्र-तारिणी ।।**
**उग्रापत्-तारिणी यस्माद्,** उग्र-तारा **प्रकीर्त्तिता ।।**

**अर्थात् दक्ष - गृह में जो "सती" नाम से उत्पन्न हुई, वही केवलत्व (ब्रह्मत्व, एकत्व) देनेवाली होने के कारण "एक-जटा" कहलाईं । तारक (मोक्ष देनेवाली) होने के कारण, वे सर्वदा "तारा" हैं । अनायास वाक् प्रदान करने के कारण, वे "नील-सरस्वती" (लील = नील) हैं । उग्र होने के कारण और भयङ्कर विपत्ति से बचानेवाली होने के कारण, वे "उग्र-तारा" कही जाती हैं ।**

'तारोपनिषत्' में 'भगवती तारा के विराट् स्वरूप एवं माहात्म्य' का वर्णन इस प्रकार है—

**ॐ वह ब्रह्म सत्य है । उसका रूप प्रकृति से परे है । वह आकाश की आभावाला है । उससे परे परम महान् सत्य है, वह मैं "ह्रीं"-कार रक्त-वर्ण है । "स्त्रीं-कार" अनेक वर्ण का है । पीले वर्ण का "हूं"-कार विशद—विस्तृत आभावाला, मेरा हृदय-स्वरूप, भू - मण्डल है । धूम्र - वर्ण 'फट्"-कार मेरा खड्ग है । जाज्वल्यमान "ॐ"-कार मेरा मस्तक है । "वेद' —मेरे हाथ हैं । "चन्द्र - सूर्य, अग्नि"–ये मेरे नेत्र हैं । "दिन-रात"–मेरे पैर हैं । "सन्ध्याएँ"—मेरे कान हैं । "सम्वत्सर"—मेरा पेट है । "सात दिन और ऋतुएँ"–मेरे दाँतों की पंक्तियाँ और मेरे पार्श्व हैं । "समस्त विद्याएँ"–मेरी अँगुलियाँ हैं । "अग्नि"–मेरे नख हैं । मेरा मुख—"भूमि" है । "द्यु-लोक"-मेरी जिह्वा है । "आकाश"-मेरा मुख है । "भक्ति"–मेरा हृदय है । "रस"-मेरा चर्म है । "अन्न"–मेरा रक्त है । "फल"–मेरे कपड़े हैं । "निरहङ्कारता"--मेरी हड्डियाँ हैं । "सुधा"-मेरी मज्जा है । "स्थावर" मेरे रोम हैं । "पातालादि"-मेरे स्तन हैं । "ब्रह्म-नाद"–मेरी नाड़ियाँ हैं । "ज्ञान"-- मेरा मन है । "क्षमा"--मेरी बुद्धि है । "शून्य"--मेरा आसन है । "नक्षत्र"–मेरे आभूषण हैं ।**

**यह मेरा विराट् शरीर है । 'सत्व' - स्वरूप, 'विन्दु' - स्वरूप, 'महा-कार' - स्वरूप, 'ज्योतिर्मय' जल—मेरा शिर है । उग्र-तारा, महोग्रा, नीला, घना, एक-जटा, महा-माया, प्रकृति मुझको जानकर जो मेरा मन्त्र जपता है; मेरे रूपों को जानता है; मेरे मन्त्र को जो जपता है; मेरे कल्पित रूपों को जो जपता है; जो भग को भजता है--वह निर्विकल्प साधक सदा मेरा रूप बन जाता है । उसे समस्त कार्य साध्य हो जाते हैं और वह निर्भय हो जाता है । गुरुदेव को नमस्कार कर, स्तुति कर, वस्त्रादि प्रदान कर इस उपनिषद्-विद्या को प्राप्त कर जो साधक मेरे मन्त्र को जपता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।**

'श्रीताराऽष्टक' में भगवती तारा के विलक्षण स्वरूप का रहस्योद्‌घाटन इस प्रकार हुआ है—

प्रणाम करनेवाले भक्तों को 'सौभाग्य-सम्पत्ति' देनेवाली, भगवान् शिव की छाती पर दायाँ पैर रखकर खड़ी होनेवाली, मुस्कान-युक्त कमल-मुखी, खिले हुए नील-कमल-सम तीन नेत्रोंवाली, कैंची, नर-कपाल, नील-कमल और खड्ग धारण करनेवाली हे नील-सरस्वति माँ ! मैं तुम सर्वेश्वरी की शरण का आश्रय लेता हूँ । वाणी की ईश्वरी, भक्तों के लिए कल्प-लता, सभी कामनाओं को सिद्धि देनेवाली, गद्य-पद्य-रचना एवं सर्वज्ञता की सिद्धि-दायिनी, नील-कमल-वत् सुन्दर तीन नेत्रोंवाली, दया - सागरा हे माँ ! तुम कृपा कर मुझ जैसे भक्त को सौभाग्यामृत से सींच दो । छोटे शरीरवाली, सभी प्रकार के गर्व से पूर्णा, सर्पादि वेश से उज्ज्वला, व्याघ्राम्बर से शोभित सुन्दर कटि में बँधी घण्टियों से मधुर शब्द करनेवाली, तत्काल कटे और रक्त बहते हुए दो नर-मुण्डों को परस्पर गले मिलाकर धारण करनेवाली, मुण्ड-माला से शोभित हे भयङ्करि माँ ! मेरे भय का नाश करो ।

'ॐ स्त्रीं हूं फट्'—मन्त्र - स्वरूपवाली हे माँ ! मेरे जैसे भक्त की तुम्हीं शरण हो । हे माँ ! तुम्हारा विग्रह स्थूल, सूक्ष्म और पर–तीनों धाम से बना है । वेदों से भी उसका ज्ञान किसी प्रकार नहीं होता । विशेष ज्ञानियों द्वारा नमस्कृता तुम्हारा मैं आश्रय लेता हूँ । तुम्हारे चरण - कमलों की सेवा से पुण्यात्मा लोग सायुज्य मुक्ति को पाते हैं और ब्रह्मा - विष्णु - महेश के समान होते हैं । संसार - सागर में डूबने में चतुर इन्द्र-प्रमुख देवताओं की, जो तुम्हारी चरण - सेवा से विमुख हैं, कौन मन्द - बुद्धि सेवा करता है ? अर्थात् कोई बुद्धिमान् तुम्हें छोड़ अन्य देवों की उपासना नहीं करता ।

हे माँ ! तुम्हारे दोनों चरण-कमलों की धूलि जिन देवों के मुकुटों पर अङ्कित है, वे देवासुर-संग्राम में विजयी होकर तुम्हारी गोद में निश्चिन्त होकर रहते हैं । 'मैं देवता हूँ, त्रिभुवन में मेरे समान कोई नहीं है'––ऐसी स्पर्द्धावाले भेड़ों के समान स्वयं ही विनष्ट हो जाते हैं । हे माँ ! तुम्हारे नाम के स्मरण मात्र से भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षसों के समूह और यक्ष, नाग, दैत्य, दानव, खेचर, व्याघ्रादि पशु, डाकिनी तथा क्रुद्ध यम भी भाग खड़े होते हैं, तुम्हारे भक्त की ओर देख तक नहीं सकते अर्थात् उन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते । हे माँ ! तेरे चरण - कमलों की सेवा से मनुष्यों को सभी गुणों की सिद्धि निश्चय ही मिल जाती है––लक्ष्मी-सिद्धि, सर्व-सिद्धियाँ, पादुकादि सिद्धियाँ, शत्रु - स्तम्भन, गज - समूह-स्तम्भन, सम्मोहनादि सिद्धियाँ प्राप्त होकर मनुष्य कामदेव से भी बढ़ जाता है । साधारण मनुष्य भी बृहस्पति के समान पूजनीय विद्वान् हो जाता है ।

ऐसी महिमावाली भगवती तारा के सम्बन्ध में प्रकाश डालने के लिए प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है । आशा है कि भक्त-जन इससे लाभ उठाएँगे । —ऋतशील शर्मा

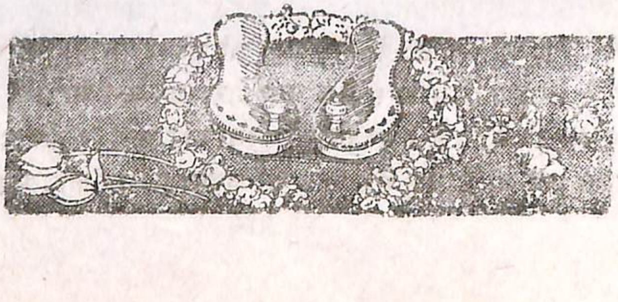

श्रीतारा-त्रिपुरायै नमः

# श्री तारा चालीसा

जगत-तारिणी जानकर, बन्दौं चरण तुम्हारे ।
सकल कामना पूर्ण करो, हरहु क्लेश हमारे ।।

जय माँ तारा तरण-तारिणी । जय जग-जननी शम्भु-भामिनी ।।
शवारूढ़ श्मशान - वासिनी । उग्र - रूप अट्टहास - कारिणी ।।
श्याम-वरण बाघम्बर - धारी । लक्ष रवि सम आभ तुम्हारी ।।
पिङ्गल जटा ब्याल शिर वेणी । रसप घोर अरुण त्रिनैनी ।।
चतुर्बाहु भुज - दण्ड विशाला । कङ्गन फणि वक्ष मुण्ड-माला ।।
खप्पर जलज कर्त्रि कृपाणा । हस्त लिए तुम काल-समाना ।।
रक्त-चरण छवि सहस्र मनोजा । हरत सकल अघ भर उर ओजा ।।
पद-नख झलमल ज्योति रतन की । छवत खुलत निगाह नयन की ।।
शिव अक्षोभ्य की शक्ति तारा । सूर्य - प्रलयो द्वि-सृष्टि-धारा ।।
तुम गौरी लक्ष्मी ब्रह्माणी । महद्-प्रकृति माया विज्ञानी ।।
स्वाहा स्वधा तू ही ओंकारी । ऐं - ह्रीं - क्लीं-हूं फट्-कारी ।।
तू पूर्ण ब्रह्म ब्रह्माण्ड-नायिका । वाक् - चातुरी छन्द-गायिका ।।
तू माँ पूर्ण पुनः तू रीता । सगुनागुन से परे अनीता ।।
ब्रह्मा विष्णु एवम् महेशा । बिन तेरे जड़-वत् शव-भेषा ।।
तू रवि - तेज अग्नि - दाहकता । मलय-गति निशिकर-शीतलता ।।
ग्रह-नक्षत्र - ब्रह्माण्ड - निकाया । तूने रचि यह अदभुत माया ।।
जब तुम शान्त, सृष्टि मुस्काती । जब अशान्त, प्रलय लहराती ।।
जड़ चेतन अरु जीव प्रवीणा । सब तुममें, तुम सबमें लीना ।।
सभी तुम्हीं से जीवन पाते । अन्त समय तुझमें मिल जाते ।।
यन्त्र - मन्त्र इतिहास - पुराणा । आगम - निगम-वेद प्रमाणा ।।

तव सम्मुख सब दिखऊ बौना । अगम अकथ कह साधेउ मौना ।।
पालन - सृष्टि एवं संहारा । तव इङ्गित पर सम्भव सारा ।।
देव - देवियाँ सन्त घनेरे । ध्यावहिं तुमको साँझ - सबेरे ।।
घोर छटा माँ तेरी जितनी । परम कारुणिक हो तुम उतनी ।।
तू पावन सुर-सरि की धारा । तरत अधम नहावन-हारा ।।
तारिणि कल्प - वृक्ष की छाया । पाया वही, जो जा मन भाया ।।
'तारा'-नाम पारस की खानि । रटत मूढ़ बनत विज्ञानी ।।
भूत - पिशाच - असुर - गन्धर्व । सुमिरत नाम पलायत सर्व ।।
अर्थ - धर्म - मोक्ष अरु कामा । तू देती, यद्यपि विधि वामा ।
दया - मात्र माँ जापर तेरी । ऋद्धि-सिद्धि ताके घर चेरी ।।
दान - धर्म पुण्य—बहु कीजै । योग - यतन समाधि लीजै ।।
पर जग से नहीं मुक्ति भाई ! जब तक तुम नहीं होत सहाई ।।
जो कोई तुझको शिशु-वत ध्यावै । यह चालीसा-पाठ सुनावै ।।
दुःख-दारिद्र नहीं ता घर आवें । अन्त-काल परम-पद पावे ।।
सत्य कहहुँ माँ ! तुम्हरी दुहाई । शङ्कर-वचन वृथा नहिं जाई ।।
कोटि जनम धर वाणी-गणेशा । जानहिं तुम्हें मात्र लव-लेशा ।।
मैं मूरख क्या महिमा गाऊँ ? 'माँ-माँ' कह केवल तुतलाऊँ ।।
सुत - हठ जान एक वर देहू । अरुण युगल पद पङ्कज नेहू ।।

काम-क्रोध-मद वारि-सिन्धु में, 'तारा'-तरण जहाज ।
मैं ऊब - डूब तुम राखेउ, चरण गहे की लाज ।।

—डा० रामशङ्कर सिंह, ग्राम-पो० गङ्गा-पीपर, पूर्वी चम्पारण (बिहार)

# तारा-स्तोत्र

[दश-महा-विद्या–सिद्ध श्रीसर्वानन्दनाथ-कृत]

(प्रेषक—श्री रासमोहन चक्रवर्ती)

श्री सर्वानन्दनाथ ने पूर्वी बङ्गाल के त्रिपुरा जिले में मेहार नामक स्थान में पौष संक्रान्ति की मध्य रात्रि में जीव-वृक्ष के मूल पर उत्कट 'शव-साधना' करके जगन्माता का दर्शन लाभ किया था। सर्वानन्दनाथ की प्रार्थना पर जगदम्बा ने अपने दश-महा-विद्या-स्वरूपों को एक-एक करके उनके सम्मुख प्रकट किया था। उस समय द्वितीय महा-विद्या 'तारा' का दर्शन पाकर सर्वानन्दनाथ ने निम्न-लिखित स्तव द्वारा उनकी स्तुति की थी—

शत-कोटि-दिवाकर-कान्ति-युतम्,
विधि-विष्णु-शिरो-मणि-रत्न-धृतम्।
चलदुज्ज्वल-नूपुर-गान - युतम्,
जगदीश्वरि, तारिणि! ते चरणम्॥

अर्थात्—हे जगदीश्वरि तारे! तुम्हारे चरण शत-कोटि सूर्य के प्रकाश के समान समुज्ज्वल हैं। ब्रह्मा और विष्णु के मस्तकस्थ किरीट-रत्नों से वे चरण सुशोभित हैं। गति-शील उज्ज्वल-नूपुरों के सङ्गीत से तुम्हारे चरण शब्दायमान हो रहे हैं।

कुसुमाकर - शेखर - धूसरितम्,
मद-मत्त - मधु-व्रत - गुञ्जयितम्।
जगदुद्भव - पालन-नाश-करम्,
जगदीश्वरि, तारिणि! ते चरणम्॥

अर्थात्—हे जगदीश्वरि तारिणि! तुम्हारे चरण ऋतु-कालीन सुशोभन पुष्प-राजि द्वरा धूसरित हैं। इन चरणों पर मद-मत्त भ्रमर-गण गुञ्जन कर रहे हैं। तुम्हारे ये चरण जगत् की सृष्टि, स्थिति और विनाश के कारण हैं।

# भगवती तारा के विविध ध्यान

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

**१ गन्धर्व-तन्त्र—**

श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य, तत्र कल्प-द्रुमं स्मरेत् ।
तन्मूले मणि-पीठं च, नाना-मणि-विभूषितम् ।।१
शिवाभिर्बहु-मांसास्थि-मोद-मानाभिरन्ततः ।
चतुर्दिक्षु शवा मुण्डाश्चिताङ्गारास्थि-भूषिताः ।।२
तन्मध्ये भावयेद् देवीं, यथोक्त-ध्यान-योगतः ।

**२ नील-तन्त्र—**

प्रत्यालीढ़-पदां घोरां, मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां, व्याघ्र-चर्मावृतां कटौ ।।१
नव-यौवन-सम्पन्नां, पञ्च-मुण्ड - विभूषिताम् ।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां, महा-भीमां वर-प्रदाम् ।।२
खड्ग-कर्त्री-धरां सव्ये, वामे मुण्डोत्पलान्विताम् ।
बालार्क-मण्डलाकार-लोचन - त्रय - भूषिताम् ।।३
पिङ्गोग्रैक-जटां ध्यायेन्, मौलावक्षोभ्य-भूषिताम् ।
नील-नाग-जटा-जूटां, श्वेताहि -कृत - कुण्डलां ।।४
पीताहि - कंकणोपेतां, धूम्राहि - बाहु - भूषणां ।
श्याम-नागोपवीतां च, शुभ्राहि-हार - भूषणां ।।५
श्वेत-नाग-लसत् काञ्चीं, पाटलाहि- पद - द्वयां ।
पार्श्व-द्वये लम्बमान - नीलेन्दीवर - मालिकां ।।६
प्रज्वलत्-प्रेत-भू-मध्य-स्थितां दंष्ट्रा-करालिनीम् ।
शव-कण्ठ-पद-द्वन्द्व - वाम - दक्ष - पद - द्वयाम् ।।७
सावेश-स्मेर - वदनां, भक्तानामभय-प्रदां ।।८
प्रलय - जलधि - मध्ये, स्फीत - फुल्लाम्बुजस्थां ।
जलद - पटल - नीलां, लोल - जिह्वां त्रि-नेत्रां ।।९
शिव - शव - हृदि - वासामासवाद् घूर्णिताक्षीं ।
उडु - गण - कृत - हारामाश्रये नील - ताराम् ।।१०

३ मन्त्र-चूड़ामणि--

तस्योपरि गृहे देवीं, खर्वां नील-मणि-प्रभाम् ।
लम्बोदरीं व्याघ्र-चर्म-समावृत-नितम्बिनीम् ॥१
पीनोन्नत-पयोभारां, रक्त-वर्त्तुल - लोचनाम् ।
ललज्जिह्वां महा-भीमां, दंष्ट्रा-कोटि-समुज्ज्वलाम् ॥२
नीलोत्पल-लसन्मालां, बद्ध-जूटां भयङ्करीम् ।
श्वेतास्थि-पट्टिका-युक्त-कपाल-पञ्च - शोभिताम् ॥३
ललाटे रक्त - नागेन, कृत - कर्णावतंसकाम् ।
अति-शुभ्र-महा-नाग-कृत - हार-महोज्ज्वलाम् ॥४
दूर्वा-दल-श्याम - नाग-कृत - यज्ञोपवीतिनीम् ।
चतुर्भुजां रक्त-मांस-खण्ड - खण्डित-मुष्टिना ॥५
जटा-जूटाक्ष-सूत्रेण, शोभितां तीक्ष्ण-धारया ।
खड्गेन दक्षिणस्योर्ध्वे, शोभितां वीर-नादिनीम् ॥६
तदधःस्थाद् बीज-वृन्त-कर्त्रिकाऽलङ्कृतां पराम् ।
वामोर्ध्वे रक्त-नालेन, दिगम्बर-मनोहराम् ॥७
दधतीं नील-पद्मं च, तदधःस्थात् कपालकम् ।
जगतां जाड्य-संयुक्तं, दधतीं कुन्द-सन्निभम् ॥८
धूम्राभ-नाग - सन्दोह-कृत - केयूर - सत्त्वराम् ।
सुवर्ण-वर्ण-नागेन, कङ्कणोज्ज्वल-पाणिकाम् ॥९
शुभ्र-वर्ण-महा- देव - कृत-सद् - विमलासनाम् ।
निर्यन्त्रण-भिया तद्-वत्, संकुचत्-प्रपदात्मिकाम् ॥१०
शव-पाद - द्वयारूढ़ - वाम-पादां महोन्मुखीम् ।
कुन्दाभ-नाग-संशोभि-कटि-सूत्रां त्रि-लोचनाम् ॥११
असृग्-रक्तेन नागेन, कृत-नूपुर-पल्लवाम् ।
सद्यश्छिन्न-गलद् - रक्त - मुण्डैः रक्त-विभूषणैः ॥१२
अन्योऽन्य-केश-ग्रथितैः, पाद- पद्म-विलम्बितैः ।
पञ्चाशद्भिर्महा-माला-शोभितां परमेश्वरीम् ॥१३
ज्वलच्चिता-मध्य-संस्थां, द्वीपि-चर्मोत्तरांशुकाम ।
अक्षोभ्य-नाग-सम्बद्ध - जटा-जूटां वर - प्रदाम् ॥१४

एवम्भूतां महा-देवीमात्मानं याग-वस्तु च ।
विज्ञापयेन् महा-देव ! पण्डितोऽहं महा-कविः ।।१५

**४ तारोपनिषद्**—

विरुद्ध-वाक्यार्थ-शरीर—मण्डले, नवाम्बुदाभां गुरुमुन्नतोदरीम् ।
अतीव - खर्वां नव-यौवनस्थामधःस्थ-शार्दूलक - कृत्ति-मूर्धजाम् ।।१
अनैक्यमाहत्य शवोपरि-स्थितां, शवार्धमालीढ़-परीत-मध्यमाम् ।
विशीर्ण-वर्णां नृ-शिरः-स्रजोद्भवां, त्रयी-विवर्त्तारुण-लोचन-त्रयाम् ।।२
अभेद-पिङ्गैक-जटा-विराजितां, विभूषणाछिन्न-सितास्थि-भीषणाम् ।
महाऽष्ट-सिद्धि - प्रकराहि - भूषणामट्टाट्ट-हासैर्जगतामभीतिदाम् ।।३
जटास्वनन्तः श्रवसोश्च तक्षको, महाहि-पद्मो हृदि हार-भूषणाम् ।
तथैव कर्कोट-कृतोपवीतिकां, सु-मेखलायामथ देव-वासुकिः ।।४
स-शङ्ख-पालः किल कङ्कणो मतः, पदेषु पद्मः किल नूपुर-श्रियम् ।
भुजेषु नागः कुलिकोऽङ्गदो मतो, भुजोऽर्ध-माला महता स्थितिः स्थिता ।।५
सितश्च रक्तो धवलश्च मेचकस्तथैव नागोऽथ सितश्च पाण्डरः ।
भुजङ्ग-मानामिह वर्ण-जातयो, भवन्ति सर्वे मुनिभिर्ज्वलच्चिताम् ।।६
कपाल-कर्त्री-ग्रथितोग्र-मूर्धजां, स-नालमिन्दीवर-कान्ति-मालिकाम् ।
विकोश-खड्गं सततं च दक्षिणे, स्व-पौरुषोत्थैर्दधतीं भुजैः सदा ।।७
पदार्थ-दंष्ट्रा-द्वय - पञ्च - मुद्रया, विराजमानामसितोत्पल - स्रजम् ।
विचिन्तयेत् तां च कवित्व-कारिणीं, मनोगतार्थं प्रजपेच्च तारिणीम् ।।८

**५ फेत्कारिणी तन्त्र**—

प्रत्यालीढ़-पदार्पिताङ्घ्रि- शव - हृद् - घोराट्ट - हासा रवा,
खड्गेन्दीवर - कर्त्रि - खर्पर - भुजा हूंकार-बीजोद्भवा ।।१
खर्वा नील-विशाल - पिङ्गल - जटा-जूटोग्र - नागोज्ज्वला,
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रि-जगतां हन्त्युग्र-तारा स्वयम् ।।२

**६ ब्रह्म-संहिता**—

ज्वलत्-पावक-जाल-ज्वालाऽति-भास्वच्चिता-मध्य-संस्थां सु-पुष्टां सु-खर्वाम् ।
शवं दक्ष-पादेन कण्ठे निपीड्य, स्थितां वामकेनाङ्घ्रिणाङ्घ्रिं निपीड्य ।।१
बृहल्लम्ब - मानोदरीं मेघ - वर्णां, समुत्तुङ्ग - पीन-स्तनाभोग - रम्याम् ।
जवा-राग-राग-प्रवृत्तां त्रि-नेत्रां, ललज्जिह्वया दंष्ट्रया भीषणास्याम् ।।२

लसद्-द्वीपि-चर्मावृताङ्गीं स्मितास्यां, जटा-जूट-मध्य-स्थितेन्दीवराङ्गीम् ।
शिरो-देश-भास्वत्-पिशङ्गाभि-सर्पज्जटा-जूट-मध्य-स्थिताक्षोभ्य- मूर्तिम् ।।३
मिथः केश-बद्धाचिर-छिन्न-सम्यग्-गलल्लोहितां मानवीं मुण्ड-मालाम् ।
दधानां च पञ्चाशदाख्यान-संख्याऽयुत - छिन्न - मुण्डावलीं निर्मलाङ्गीम् ।।४
महाऽसृक्-स-मांसोत्कराधार्य सव्य-स्फुरत्-पाणिना धारयन्तीं महाऽसिम् ।
भुजे वाम ईषत्-स्फुरद्-रक्त - नाल - स्फुरन्नील - पङ्केरुहं धारयन्तीम् ।।५
करे सव्य उच्चैरधस्ताद् दधानां, शितां कर्त्रिकां वाम-पाणौ कपालम् ।
जगद्-वर्त्ति-संसार-जाड्याति-पूर्णं, स्फुरत्-कर्त्रिका-धारया खण्डयन्तीम् ।।६
विचित्रास्थि-मालं करालं कपालं, ललाटे च पञ्चान्वितं धारयन्तीम् ।
घनाभाहि - बद्धं जटा - जूटमुच्चैर्जवा - राग-नागोल्लसत् - कुण्डलां च ।।७
स्फुरद्-धूम-रोचिर्महा-काय-नाग- स्फुरच्चारु - केयूर - शोभाऽभिरामाम् ।
सुवर्णाभ-नागोल्लसत् - कङ्कणेन, स्फुरन्तीं लसच्छ्वेत-नागाभिरामाम् ।।८
शरीरेण दूर्वा-दल-श्याम-नागैः, कृतं चारु - यज्ञोपवीतं दधानाम् ।
दधानां च कुन्दाभ-नागेन सम्यक्, कृतं चारु-काटेय-सूत्रं पवित्रम् ।।९
महा-पाटलाभेन नागेन वृत्तां, विभूषां च पाद-द्वये सन्दधानाम् ।
चिरं चिन्तयामीदृशं चारु - रूपाममेयामदोषामपारां स - साराम् ।।१०
सुर-श्रेणि-मौलि-प्रभा-रञ्जिताङ्घ्रिं, नताऽशेष-दोषापहामिष्ट-दात्रीम् ।
यदीय-प्रसादादिदं विश्व-जातं, जनः प्राप्नुयान् मोदते सम्यगेव ।।११
सदैव स्तवं यः पठेदेक-चित्तो, वशस्तस्य लोको भवेत् तन्न नूनम् ।
न दारिद्र्य-पापे न वा दुर्मतिः, स्याल्लभेतापि मोक्षं तथा धर्म-कामौ ।।१२

**७ श्रीभैरवी-तन्त्र—**

ध्यायेत् कोटि - दिवाकर-द्युति - निभां बालेन्दु - युक् - शेखरां ।
रक्ताङ्गीं रसनां सुरक्त - वसनां पूर्णेन्दु - बिम्बाननाम् ।।
पाशं कर्त्रि - महांकुशादि दधतीं दोर्भिश्चतुर्भिर्युतां ।
नाना - भूषण - भूषितां भगवतीं तारां जगत् - तारिणी ।।

# नारा विद्या-प्रशंसा

श्रीमहादेव उवाच—अतः परं किं वक्तव्यं, कथयस्व हर-प्रिये !

श्रीमहा-देव जी बोले—हें हर-प्रिये ! बताओ, इसके बाद और क्या कहना है ?

श्रीपार्वत्युवाच—महा-विद्यां महादेव ! कथयस्व मम प्रियाम् ।

श्री पार्वती बोलों—हे महा-देव ! मेरी प्रिय महा-विद्या का वर्णन करें ।

श्रीमहादेव उवाच -नष्टे सृष्टे महा-देवि ! नष्टे स्थावर - जङ्गमे । बृहदण्डमभूदेकं, सृष्टेः पूर्वं महत्-तरम् ।। तत्र जज्ञे स्वयं विष्णुश्चतुर्भुज-समन्वितः । शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-चतुर्भुज-धरो हरिः ।। तस्य नाभौ ततो ब्रह्मा, जज्ञे सृष्टस्य च क्षये । ललाट-देशे तस्यैव, रुद्रो जज्ञे स्वयं हरेः ।।

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे महा-देवि ! सृष्टि के नष्ट हो जाने पर—चर-अचर के नष्ट हो जाने पर, पुनः सृष्टि के पूर्व एक विशाल अण्डा हुआ । उसमें से शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किए हुए चतुर्भुज हरि स्वयं विष्णु जी उत्पन्न हुए । तब उनकी नाभि से ब्रह्मा जी सृष्टि-क्षय होने पर उत्पन्न हुए । स्वयं हरि के ललाट से रुद्र उत्पन्न हुए ।

ब्रह्मा पप्रच्छ देवेशं, विष्णुं त्रि-भव-मोचनम् । 'कस्या विद्यां समाराध्य, चतुर्वेदी निगद्यते' ?

ब्रह्मा जी ने तीनों भुवनों के रक्षक विष्णु जी से पूछा कि—"किस विद्या की आराधना कर चारों वेदों का वर्णन किया जाता है ?"

विष्णुरुवाच देवेशं, 'हरं पृच्छस्व शङ्करम्' । (सरस्वती महा-विद्या, शिव-देहे प्रतिष्ठिता ।।)

विष्णु जी ने ब्रह्मा जी से कहा कि—"शङ्कर जी से पूछो, क्योंकि महा-विद्या सरस्वती शिव जी की देह में प्रतिष्ठित हैं ।"

तस्य तद्-वचनं श्रुत्वा, ब्रह्मा पप्रच्छ शङ्करम् । 'कथयास्माकं देवेश ! नाम्ना नील-सरस्वतीम्' ।।

उनकी इस बात को सुनकर ब्रह्मा जी ने शिव जो से पूछा—हे देवेश ! मुझे नील-सरस्वती नामक देवी के सम्बन्ध में बताइए ।"

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा, प्रजहास महेश्वरः । "शृणुष्वावहितो विप्र ! विद्यां नील-सरस्वतीम् । अस्याः प्रसादमासाद्य, चतुर्वेदान् वदिष्यसि ।। मेरोः पश्चिम-कुले च, 'चोल'-नामा ह्रदः स्मृतः । तत्र जज्ञे स्वयं वेद-माता नील-सरस्वती ।। एतस्मिन्नेव काले तु, मेरु-शृङ्ग-परायणः । जप-जाप्यं समासाद्य, त्रि-युगं च ततः स्थितः ।। ममोर्ध्व-वक्त्रान्निःसृत्य, तेजो-राशि-विनिर्गता । ह्रदे चोले निपत्यैव, नील - वर्णाऽभवत् पुरा ।। ह्रदस्य चोत्तरे भागे, ऋषिरेकोऽभवत् ततः । 'अक्षोभ्य'-नाम चाश्रित्य, मुनि-वेश-धरः शिवः ।।

ब्रह्मा जी की बात सुनकर महेश्वर जी हँस कर बोले, हे विप्र ! सावधान होकर नील-सरस्वती विद्या को सुनो । इनकी प्रसन्नता पाकर चारों वेदों को कहोगे । मेरु पर्वत के पश्चिम कुल में 'चोल' नामक सरोवर है । वहीं स्वयं वेद-माता नील-सरस्वती उत्पन्न हुई । इसी काल में मेरु के शिखर पर मैं तीन युगों तक साधना-परायण होकर

जप-जाप्य को पूर्णकर वहीं स्थित रहा। मेरे ऊर्ध्व मुख से निकली हुई तेजो-राशि बाहर जाकर 'चोल' सरोवर में गिरकर प्राचीन काल में नील-वर्ण की हो गई। तभी सरोवर के उत्तरी भाग में शिव जी मुनि-वेश धारण किए हुए 'अक्षोभ्य' नाम ग्रहण कर एक ऋषि हुए।

**एतस्मिन्नेव काले च, कैलास-शिखरे स्थितम्। पार्वती प्राह देवेशं, देवी प्रकृति-सुन्दरी। वक्षः-स्थले समासीना, पृच्छति स्म नगात्मजा।। 'कथमीशान ! सार्वज्ञ्यमलभँस्ते तपोधनाः। कां विद्यां प्राप्य कवयो, भारतादि प्रचक्रिरे ?'।।**

इसी बीच में कैलास के शिखर पर बैठे हुए देवेश शङ्कर जी से प्रकृति-सुन्दरी पार्वती बोलीं। शिव जी के वक्षःस्थल से लगी हुई पर्वत-पुत्री ने पूछा कि—"हे ईशान ! किस विद्या को प्राप्त कर तपस्वी कवियों ने सर्वज्ञता को प्राप्त कर भारतादि ग्रन्थों की रचना की ?"

**श्रुत्वा नगात्मजा-वाक्यं, विहस्य परमेश्वरः। प्राह प्रियां परिष्वज्य, 'साधु साध्वि'ति पूजयन्।। "श्रृणु साध्वि ! महा-विद्यामज्ञानेन्धन-दाहिनीम्। यामवाप्य महात्मानो, भारतादि प्रचक्रिरे।। नासाध्यं मेनिरे किञ्चित्, कवयः शुद्ध-बुद्धयः। वादे सदसि या वाक्य - स्तम्भिनी प्रति-वादिनाम्।। महा-वैरि-हानि-करी, विदुषां बलि-दानतः। हास्याय या मनुष्याणामशुद्धमपि जल्पयेत्।। वादिनं वापि राजानं, मन्त्रिणं वशमानयेत्। ज्ञान-मात्रेण मन्त्रस्य, जपात् सर्वज्ञतामियात्।। जिह्वायां न्यसनादेव, मूकोऽपि सु-कविर्भवेत्। दीनो धन-समृद्धः स्याद्, राजा राज्यमवाप्नुयात्। ब्राह्मणो मुक्तिमाप्नोति, मन्त्रस्यास्य प्रसादतः।। श्रृणु दद्यान्महेशानि ! न शूद्राय कदाचन। अव्याहता मतिः शास्त्रे, विजयो वाक्-पतेरिव"।।**

पार्वती की बात को सुनकर परमेश्वर ने हँस कर प्रिया का आलिङ्गन कर, 'बहुत सुन्दर, बहुत सुन्दर' कह उन्हें सम्मानित करते हुए कहा कि—"हे साध्वि ! सुनो, अज्ञान-रूपी इन्धन का दहन करनेवाली महा-विद्या है, जिसे प्राप्त कर महात्माओं ने भारतादि की रचना की। उन शुद्ध-बुद्धिवाले कवियों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। वह महा-विद्या सभा में, वाद-विवाद में प्रति-वादियों की वाणी का स्तम्भन करनेवाली है, विद्वानों के लिए बलिदान द्वारा वैरियों को हानि पहुँचानेवाली है। वाद-विवाद में कुशल राजा या मन्त्री को वश में ले आती है। ऐसा उसके मन्त्र को जानने मात्र से हो जाता है। जप करने से सर्वज्ञता मिल जाती है। जिह्वा में न्यास करने से मूर्ख भी सुकवि (विद्वान्) हो जाता है। दीन धनवान हो जाता है और राजा राज्य - लाभ करता है। अर्थात् उसके राज्य का विस्तार होता है। इस मन्त्र के प्रभाव से ब्राह्मण मुक्ति-लाभ करता है। हे महेशानि ! इसे शूद्र अर्थात् संस्कार-विहीन व्यक्ति को कभी न बताए। इसके

द्वारा व्यक्ति को शास्त्र समझने में कोई कठिनाई नहीं होती और वाणी के स्वामी के समान सर्वत्र विजयी होता है ।

**अस्त्रान्तेऽयं महा-विद्या, जटा-पुङ्गव-धारिणी । वेदादि-मुख-युक्ता चेत्, तारा त्रि-भव-तारिणी ।।**

अन्त में 'अस्त्र' (फट्) होने से यह महा-विद्या जटा-पुङ्गव-धारिणी 'एक-जटा' कहलाती है और यदि वेदादि-मुख-युक्ता हो अर्थात् आदि में 'ॐ' हो, तो तीनों भुवनों का उद्धार करनेवाली 'तारिणी' कही जाती है ।

**लीलया वाक्-प्रदा, चेयं तेन नील - सरस्वती । तारकत्वात् सदा तारा, सुख-मोक्ष-प्रदायिनी ।। उग्रापत्-तारिणी यस्मादुग्र-तारा प्रकीर्तिता । श्रीबीजाद्या यदा विद्या, तदा श्रीः सर्वतोमुखी । एषैव हि महा-विद्या, मायाऽऽद्या सकलेष्टदा । वाग्-भवाद्या महा-वाक्य-स्वरूपा सर्व-वाङ्-मयी ।। गुटिका-सिद्धि-वेताल-पाताल-वट-यक्षिणी । पर-पुर-प्रवेशश्च, आज्ञा-सिद्धिः प्रजायते । जिह्वायां चिन्तनादेव, त्रिकालज्ञो भवेद् ध्रुवम् । यस्तु विद्यामभेदेन, चिन्तयेत् साधकोत्तमः । जीवन्मुक्तो विमुक्तश्च, अन्ते सोऽपि भवेद् ध्रुवम् ।**

सरलता से यह वाक्-सिद्धि प्रदान करती है, इससे 'नील-सरस्वती' नाम है । प्राणियों को सदा संसार से तारती है—सुख-पूर्वक मोक्ष प्रदान करती है, अतः 'तारा' नाम से प्रख्यात है ।

उग्र आपत्तियों से उद्धार करती है, इससे 'उग्र-तारा' कहलाती है । इसकी विद्या (मन्त्र) के आदि में जब श्री-बीज (श्रीं) होता है, तो यह सब प्रकार से लक्ष्मी-प्रदा होती है । यही महा-विद्या है । इसके आदि में 'माया' (ह्रीं) हो, तो यह सभी अभीष्टों को प्रदान करती है । आदि में वाग्भव (ऐं) होने से यह 'महा-वाक्य'-स्वरूपा और समस्त वाङ्मय से परिपूर्णा बन जाती है, जिससे गुटिका, वेताल, पाताल, वट-यक्षिणी, पर-पुर-प्रवेश और आज्ञा जैसी सिद्धियाँ साधकों के लिए सहज हो जाती हैं । जिह्वा पर जप करने से साधक निश्चय ही त्रिकालज्ञ बन जाता है । जो साधक इस विद्या को अभिन्न-भाव से स्मरण करता है, वह जीवन्मुक्त होकर अन्त में निश्चय ही विमुक्त हो जाता है ।

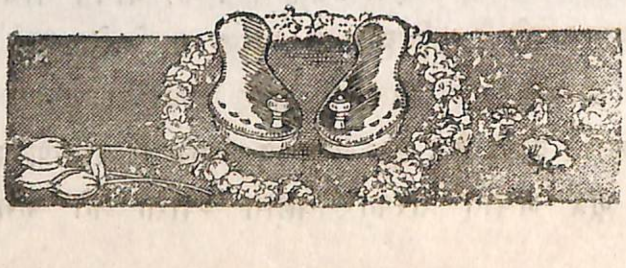

# श्री तारा-स्वरूप-तत्त्व

'दरभङ्गा-राज-वंश सम्भूत' श्री श्यामानन्दनाथ

## अगोचर ब्रह्म—'काली' और गोचर ब्रह्म—'तारा'

'ताप' अर्थात् आधि-भौतिक, आधि-दैविक और आध्यात्मिक—इन तीन तापों से तारनेवाली को 'तारा' कहते हैं। ये द्वितीया महा-विद्या या सिद्ध-विद्या भी कहलाती हैं। भगवान् पतञ्जलि ने अपने योग-दर्शन में 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' के नाम से इन्हीं विद्या की व्याख्या की है। तारा विद्या की कृपा से १ अविद्या, २ अस्मिता, ३ राग, ४ द्वेष और ५ अभि-निवेश—इन पाँचों क्लेशों से जीव की रक्षा होती है। 'तारा' और 'काली' में नाम मात्र का भेद है।

'तारा' के अन्तर्गत तीन शक्तियाँ हैं—१ नील-सरस्वती, २ एक-जटा और ३ उग्र-तारा। 'भगवती तारा' सरलता-पूर्वक ज्ञान देती हैं, इसलिए 'नील-सरस्वती' कही जाती हैं। निष्काम साधकों को उग्र आपत्ति अथवा सबसे कठिन दुःख अर्थात् भव-वन्धन से मुक्त करनेवाली और सकाम साधकों की आधि-भौतिक अथवा लौकिक आपत्ति का नाश करनेवाली होने से उन्हें 'उग्र-तारा' कहते हैं तथा कैवल्य-दायिनी होने से उन्हें 'एक-जटा' कहते हैं। सारांश यह कि इन भगवती के नाम ही से 'तारिणी' अर्थात् संसार-सागर-पार-कारिणी ब्रह्म-रूपिणी का बोध होता है।

जैसे कृष्ण और नील-वर्ण में नाम मात्र का भेद है, वैसे ही कृष्ण-वर्णा पूर्ण-ब्रह्म-स्वरूपा 'काली' और नील-वर्णा सत्त्व-गुणात्मिका तत्त्व-दायिनी 'भगवती तारा' में नाम मात्र का भेद है। इसी हेतु शास्त्र-कारों ने कहा है कि इन दोनों में भेद करनेवाला नरक में जाता है। 'तारा भगवती' श्याम-वर्णा भी हैं, जैसा कि लिखा है—

**श्याम-वर्णां त्रि-नयनां, द्वि-भुजां वर-पङ्कजे। दधानां बहु-वर्णाभिर्बहु-रूपाभिरावृताम् ॥**

'तत्त्व-बोध' में लिखा है कि—'काली ही नील-तेज-स्वरूपिणी तारा हैं।' 'काली भगवती' के क्रोध-क्रम के ध्यान से भी यही बोध होता है। वह ध्यान 'तारा' के ध्यान से मिलता-जुलता है। यहाँ तक कि उसमें 'काली भगवती' 'तारा भगवती' के समान ही 'प्रत्यालीढा' हैं। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ 'भगवती काली' निष्कल-ब्रह्म-द्योतिका हैं, वहाँ 'भगवती तारा' सकल-ब्रह्म-द्योतिका हैं। सकल-ब्रह्म का अर्थ है—कला-युक्त-ब्रह्म।

'कला' की परिभाषा शास्त्रों में इस प्रकार है कि—इसकी सर्व-कर्तृता-शक्ति संकुचित हो, कतिपय अर्थों से युक्त होकर, आत्मा को किञ्चित् और विशिष्ट काम मात्र करनेवाला बनाती हुई 'कला' कहलाती है।

कलाएँ शाक्त-शक्ति-क्रम से सात हैं, जैसा कि 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है—१ परा, २ परात्परा, ३ अतीता, ४ चित्परा, ५ तत्परा, ६ तदतीता, ७ सर्वातीता, किन्तु शक्ति-क्रम से ये सात कलाएँ उसी 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में इस प्रकार भी वर्णित हैं—१ अ, २ उ, ३ म, ४ नाद, ५ विन्दु, ६ परम-विन्दु, ७ विन्द्वतीता। विन्द्वतीता सातवीं कला का नाम 'शाम्भवी' है, जिसके ऊपर कोई सत्ता नहीं है।

उपर्युक्त सात कलाओं में 'शाम्भवी' अर्थात् सातवीं कला को छोड़कर, छः कलाएँ गोचर हैं। यही 'तारा भगवती' का रूप है क्योंकि तारा भगवती 'प्रणव-रूपा' हैं। 'प्रणव' की अन्तिम कक्षा है 'विन्दु'। इस 'विन्दु' के अतीता है—अगोचरा 'शाम्भवी कला' जो काली हैं। अस्तु, 'काली' और 'तारा' दोनों ही ब्रह्म हैं।

'काली' अगोचर ब्रह्म-द्योतक इसलिए हैं क्योंकि महा-प्रलय में आकाश का भी उनमें लय हो जाता है, जिसका अनुमान भी नहीं हो सकता। वस्तुतः आकाश, जो शून्य है, उसका लय होने पर फिर रहता क्या है, यह न मन में आ सकता है और न कहा ही जा सकता है। इसी हेतु वेद भी 'नेति नेति' कहकर चुप हो जाते हैं।

## बुद्ध-शक्ति, शब्द-ब्रह्म, प्रवण-रूपा—'तारा'

जब 'ब्रह्म' गोचर माना जाता है और 'आकाश' को ही 'ब्रह्म' माना जाता है, तो वही **'प्रणवात् ब्रह्म-रूपा तत्त्व-स्वरूपिणी'**—'तारा' के नाम से बोध होता है। आकाश ब्रह्म है। यह प्रणव-रूपा है। इस आकाश-ब्रह्म का गुण 'शब्द' है। शब्द से सृष्टि आरम्भ होती है। अतएव तारा भगवती ही 'शब्द-ब्रह्म' है। बौद्ध तन्त्रों में ॐकारा 'बुद्ध-शक्ति' को कहते हैं। यह बुद्ध-शक्ति—'तारा' ही है। ॐकार है पुल्लिङ्ग और ॐकारा है स्त्री-लिङ्ग, किन्तु अर्थ एक ही है।

ॐकार (प्रणव) को 'तारक' कहते हैं क्योंकि यह महा-मन्त्र तारनेवाला अक्षर-ब्रह्म है। ॐकार का विश्लेषण करने से हम सबसे ऊपर 'विन्दु' पाते हैं, उसके नीचे 'नाद' का चिह्न अर्द्ध-चन्द्र [ ‿ ] है, जिसका नाम है 'निर्वाण-कला' और जिसके नीचे है 'ओ', जो 'अ' + 'उ' मिलने से बनता है। 'अ' से ब्रह्मा का और 'उ' से विष्णु का बोध होता है। अब एक-एक को लेकर विवेचना करनी है कि विन्दु, नाद, ब्रह्मा और विष्णु से क्या बोध होता है ? 'विन्दु' है 'घनीभूता शक्ति' का द्योतक। विन्दु से 'कार्य-विन्दु', तब 'नाद', तब 'बीज'—ये तीनों उत्पन्न होते हैं। इस हेतु तीन अवस्थाओं के अनुसार पर-विन्दु, सूक्ष्म-विन्दु और स्थूल-विन्दु के नामान्तर हैं मनो-विन्दु, प्राण-विन्दु और अहं-विन्दु।

'विन्दु' अर्थात् घनी-भूता परा-शक्ति की इच्छा **'एकोऽहं बहु स्याम्'** से 'नाद' हुआ। अथवा 'उन्मना' और 'समना' शक्ति की सन्धि अर्थात् शिव और शक्ति की संयुक्तावस्था ही 'नाद' है। 'नाद' सदाख्य तत्त्व है और इसकी चार कलाएँ हैं—१ इन्धिका, २ दीपिका, ३ रोचिका और ४ मोचिका। अस्तु, 'नाद' का अर्थ है शब्द, जो अनाहत और आहत दो प्रकार का होता है। इससे 'सृजन-शक्ति' अर्थात् ब्रह्मा और 'पालन-शक्ति' अर्थात् विष्णु की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सृष्टि का कार्य प्रारम्भ हुआ। (यह 'प्रणव' के सृष्टि-क्रम का भाव है। इसमें 'संहार-शक्ति' रुद्र का समावेश नहीं दीख पड़ता। यह संहार-शक्ति, आवश्यकतानुसार प्रणव-अक्षर के 'संहार-क्रम' में उपस्थित होकर अपना कार्य करती है। प्रणव का यह 'संहार-क्रम' इस प्रकार है—जब हम नीचे से ऊपर की ओर चलते हैं अर्थात् प्रणव रूप 'अ+उ+म्' होता है, तब 'म्' अर्थात् 'अर्ध-मकार' ही रुद्र यानी 'संहार-शक्ति' है।)

इस प्रकार 'तारा' जिसको 'हूं-कार-वीजोद्भवा' कहते हैं, 'घनी-भूता शक्ति' से प्रकट होकर 'नाद' है। नाद (शब्द) आकाश का गुण है। गुण और गुण-मय अर्थात् शक्ति और शक्ति-मान् में अभेद है। अतः निर्गुण ब्रह्म, जब स-गुण होकर प्रकट होता है, तब उसका 'तारा' के नाम से बोध होता है। इसी स-गुण ब्रह्म की धारणा या कल्पना कर अपनी-अपनी रुचि और ज्ञान के अनुसार शास्त्रों में उसका 'ध्यान' बताया गया है क्योंकि 'ध्यान' के सिवा मोक्ष का दूसरा साधन नहीं है।

## ब्रह्म-धारणा एवं ब्रह्म-ज्ञान हेतु 'ध्यान' की आवश्यकता

शास्त्र-कारों का मत है कि ज्ञान से ही मुक्ति होती है। ज्ञान को धारणा कह सकते हैं। धारणा है, चित्त का किसी देश-विषय से सम्बन्ध। यहाँ देश से तात्पर्य है, 'ब्रह्म' से। जैसे ज्ञान से तात्पर्य है, 'ब्रह्म-ज्ञान' से। अतः ब्रह्म-धारणा और ब्रह्म-ज्ञान एक ही वस्तु है। अब यह देखना है कि यह ज्ञान परिपक्व कैसे होता है? यह परिपक्व अर्थात् स्थिर होता है 'ध्यान' से। जिस विषय-विशेष में धारणा अथवा ज्ञान से चित्त-वृत्ति को लगाया है, उसी विषय में चित्त के विजातीय प्रवाह को रोककर–सजातीय प्रत्यय-प्रवाह को निरन्तर रूप से जारी रखना ही धारणा है।

चित्त-वृत्ति अनवरत चल होने से दुर्निग्रह है अर्थात् चित्त को वश में रखना बहुत कठिन है। इसे वश में करने का उपाय एक ही है। वह है 'ध्यान', जो ज्ञान से बढ़कर नहीं, तो कम भी नहीं है। स्वयं कृष्ण भगवान् ने कहा है कि—'मन का निग्रह बड़ा कठिन है, केवल अभ्यास और वैराग्य से ही मन का निग्रह किया जा सकता है।' इस उक्ति में दो साधनों का उल्लेख है—१ अभ्यास और २ वैराग्य का, किन्तु मुख्य 'अभ्यास' ही है। 'वैराग्य' गौण है क्योंकि 'वैराग्य' से 'अभ्यास' में सहायता मात्र पहुँचती है।

'ध्यान' के अभ्यास से समाधि अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। यहाँ अगर कोई यह शङ्का करे कि 'ईश्वर-प्रणिधान' से समाधि-सिद्धि होती है, 'ध्यान' की आवश्यकता नहीं है, तो इसका उत्तर यह है कि ईश्वर का प्रणिधान अर्थात् ईश्वर में आत्म-निवेदन भी बिना धारणा और ध्यान के नहीं हो सकता। ईश्वर का ज्ञान ही नहीं होगा और धारणा की दृढ़ स्थिति नहीं होगी, तो आत्म-समर्पण असम्भव है। अतएव किसी भी मार्ग का अवलम्बन क्यों न करें, 'ध्यान' के विना मोक्ष हो ही नहीं सकता।

## ब्रह्म-रूपा माँ तारा के विविध ध्यानों का तात्पर्य

भगवती तारा के असंख्य रूप हैं। 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है—'तारा की संख्या तीन खर्व और काली की दस अर्बुद है', जो असंख्य-बोधक है। अतएव हमको यह देखना चाहिए कि देवर्षि, महर्षि आदि भाग्यवानों ने किस-किस रूप में ब्रह्म-रूपा 'माँ' तारा को देख पाया है। तत्पश्चात् यह समझना चाहिए कि उन्होंने हम अज्ञानियों के सुभोते के लिए वेद और तन्त्र-शास्त्रों में किस सङ्केत से रूप का वर्णन किया है, जिससे हम अपनी रुचि के अनुसार ध्यान कर अपने-अपने लक्ष्य पर पहुँचें क्योंकि हम सबका लक्ष्य एक नहीं है।

हममें कुछ निष्कामोपासक हैं और कुछ सकामोपासक, इससे 'ध्यान' में पृथक्ता आ जाती है। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। जैसे भगवती तारा से मोक्ष की इच्छा होने पर उसका उसी प्रकार शास्त्रोक्त ध्यान करना होता है और यदि विद्या (अपरा-विद्या) चाहते हैं, तो दूसरे प्रकार का शास्त्रानुसार ध्यान करना होता है। ऐसा न करने से फल-प्राप्ति में गड़बड़ हो जाती है। षट्-कर्मों में तो उलटा फल भी देखा गया है। दूसरी विशेषता 'ध्यान' में एक और है, जिसके बिना 'ध्यान' का महत्त्व नहीं है।

'तन्त्र' में 'ध्यान' का आधार 'जप' है। 'जप' होता है, 'मन्त्र' का। इस हेतु 'मन्त्र' के अनुसार ही 'ध्यान' करना चाहिए। यह तभी होगा, जब हम 'मन्त्र' का अर्थ गुरु-मुख से समझ कर 'ध्यान' करेंगे क्योंकि 'मन्त्र' है, इष्ट-देवता का शब्द-रूप। भगवान् पतञ्जलि ने अपने 'योग-दर्शन' में यही उपदेश

किया है कि—**उसका जप तदर्थ-भावना है।** यह तदर्थ-भावना है, देवता का स्वरूप (ध्यान) और गुण-ज्ञान, जिसके बिना जप—जप नहीं है, केवल मन्त्रोच्चारण है और जो प्रायः निष्फल ही है। बिना अर्थ समझे जप करना सुग्गे की तरह राम-राम कहना है। राम कहने से जो बोध होता है, फल उसी पर निर्भर करता है। अगर सुग्गे की तरह बोध कुछ भी न हुआ, तो फल भी उसी प्रकार कुछ न होगा।

'ध्यान' के बिना जप नहीं होता, किन्तु जप के बिना 'ध्यान' होता है। जप, 'ध्यान' का मुख्य साधन होते हुए भी, परिपक्वावस्था में पहुँचे हुए साधक को जप की आवश्यकता नहीं रह जाती। जप के बिना भी 'ध्यान' की स्थिति इच्छित समय तक रहती है। शास्त्रों में लिखा है—**'कोटि-पूजा के समान स्तोत्र का पाठ है। कोटि-स्तोत्र के पाठ के बराबर जप है। कोटि-जप के बराबर ध्यान है और कोटि-ध्यान के तुल्य लय अर्थात् मोक्ष है।'** इससे 'ध्यान' की उत्कृष्टता सिद्ध होती है क्योंकि 'लय' तो 'ध्यान' की ही चरमावस्था है।

'ध्यान' का प्रारम्भिक आधार 'मन्त्र-जप' ही है। 'मन्त्र' और देवता में अभेद है, जैसे देवता और गुरु में अर्थात् तीनों एक हैं। 'मन्त्र' की परिभाषा 'कुलार्णव तन्त्र' में इस प्रकार है कि—**'असीम तेज-वाले तत्त्व-रूपी देव के मनन से अर्थात् अर्थ-सहित स्मरण से सब प्रकार के लौकिक और पारलौकिक भय जिससे दूर हों, वही मन्त्र है।'** मन्त्र, शब्द-ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसी हेतु मन्त्र और देवता में अभेद है। जैसा कि हम पहले कह आए हैं, शब्द-ब्रह्म ही सृष्टि का कारण है। शब्द-ब्रह्म, जीव में कुण्डलिनी-शक्ति के रूप में रहता है। यह जीव की शक्ति है। देवता का प्रत्यक्ष दर्शन, कुण्डलिनी-शक्ति अथवा शब्द-ब्रह्मांश को पूर्ण करनेवाले 'शिव-शक्ति-योग' द्वारा होता है।

'मन्त्र' देवता का स्वरूप होने के कारण उसके अनुसार ही 'ध्यान' किया जाता है। 'ध्यान' की व्याख्या 'कुलार्णव तन्त्र' में सुन्दर ढङ्ग से की गई है, जो यह है—**'सब कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाओं को वश में लाकर अपने इष्ट-देवता के चिन्तन को ध्यान कहते हैं।'**

अस्तु, 'ध्यान' के बिना कुछ भी फल नहीं मिलता, यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। अब, भगवती तारा के जितने 'ध्यान' उपलब्ध हैं, उनमें से मुख्य के भाव यहाँ लिखे जाते हैं।

## भगवती तारा के विविध ध्यानों का मुख्य आशय

भगवती तारा के विविध ध्यानों का आशय यह है—**भगवती तारा का शरीर विरुद्ध-वाक्यार्थ है, यह महा-श्मशान में जलती हुई चिता में रहती है, शव पर खड़ी है, नील-वर्णा है, मोटी और लम्बे या विशाल उदारवाली है, खर्वा है, नव-यौवनस्था है, एक जटावाली है, यह जटा पिङ्ग है, जटा में अक्षोभ्य है, पञ्च-मुद्रा-विभूषिता है, कराला या भयानक दीखनेवाली है, त्रि-नयना है, चार भुजावाली है—एक में खड्ग, दूसरे में कर्त्तरिका, तीसरे में कपाल और चौथे में स-नाल कमल है, पचास मुण्डों की माला धारण करनेवाली है, अट्टहास कर रही है, लोल व लपलपाती जिह्वावाली है, आठो अङ्गों में अनन्तादि आठ वर्णों के आठ नागों को आभूषण-स्वरूप धारण करनेवाली है, दो दाँत बाहर निकले हैं, और चन्द्रार्ध-कृत-शेखरा है।**

इनमें से प्रत्येक विशेषता का सूक्ष्मार्थ समझने से ही इनके रहस्य का ज्ञान होता है। केवल शाब्दिक अर्थ से काम नहीं चलता। अतः यहाँ एक-एक की व्याख्या करते हैं—

## विरुद्ध-वाक्यार्थ-शरीरा

परोक्षत्व और अपरोक्षत्व आदि विशिष्ट चैतन्य के ऐक्य-सम्बन्धी अनेक वचनों के अर्थ में विरोध का द्योतक है। इसका लक्ष्यार्थ संक्षेप में 'अखण्ड-चैतन्य मात्र है। यह भाग-लक्षणा से बोध होता है। जैसे 'तत्त्वमसि' महा-वाक्य में सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व के विरुद्ध अर्थ के त्याग से चैतन्य मात्र का बोध होता है। इसी प्रकार ब्रह्म और अचिद्-ब्रह्म के अर्थ के त्याग से केवल अनिर्वचनीय ब्रह्म का बोध होता है। अतएव बाह्य-वृत्ति से सगुण ब्रह्म का भान होता हुआ भी अनिर्वचनीय ब्रह्म ही है। यह बात इस उदाहरण से और स्पष्ट हो जाती है कि आग और पानी परस्पर विरुद्ध होते हुए भी 'तत्त्व' होने से उनमें अभेद है। दोनों ही तत्त्व हैं।

## महा-श्मशानस्था

यह नवात्मकेश्वरी कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिका जगदम्बा त्रिपुर-सुन्दरी के विन्दु-स्थान से ऊपर और श्रीदक्षिणा-श्मशान (श्मशानाष्टक) के नीचे प्रत्यालीढ-पदाख्य श्री तारिणी-पुर है। इसका तात्पर्य यह है कि त्रिपुर-सुन्दरी भगवती प्रपञ्चेशी है। यह प्रपञ्च या जगत् वियदादि पञ्च-भूतों से है। अतएव तारा भगवती का स्थान पञ्च-महा-भूतों से परे है। इसी हेतु इसको पञ्च-शून्य-स्थिता कहा गया है।

## ज्वलच्चिता-मध्य-संस्था

अर्थात् जलती चिता के मध्य में स्थित है। यह महा-प्रकाश का द्योतक है। ज्वाला-रहित अर्थात् बुझी चिता में प्रकाश का अभाव रहता है, जो सर्वथा प्रतिकूल लक्षण है। ज्वाला ज्योति का व्यञ्जक है। शास्त्रों में जब वियदादि पञ्च-महा-भूतों का, जिनकी नित्यता केवल आकाश में लय या एक होने पर रहती है, पर-ज्योति-रूप सम्पत्ति सिद्ध है। इस अवस्था में यह ज्योति-रूप-सम्पत्ति ब्रह्म की ही है, ऐसा स्वतः सिद्ध होता है। ज्योति से परमात्मा का रूप सिद्ध होता है और 'श्रुति' के वचनों से यह आत्मा का भी रूप सिद्ध होता है। संक्षेप में जलती चिता के मध्य में स्थित होने का तात्पर्य है—स्व-प्रकाश-रूपी चित्-शक्ति में अधिष्ठिता। यह 'ब्रह्म' का ही एक लक्षण है। इससे परम कल्याण सिद्ध होता है अर्थात् भगवती तारा परम-कल्याण-मयी है, ऐसा बोध होता है।

## नील-वर्णा

नील-वर्ण शुद्ध सत्त्व-गुणात्मक घनीभूत तेज 'चिदाकाश' का द्योतक है। आकाश, जो ब्रह्म है, उसका रङ्ग या वर्ण नील होने से भगवती तारा का वर्ण नील है। इससे तारा भगवती 'खं ब्रह्म' है, ऐसा सिद्ध होता है, क्योंकि आकाश का गुण 'सर्व-व्यापकत्व' भी है। मेघ-रहित या निर्मल गगन मात्र का वर्ण नील होता है। इससे 'शुद्धत्व' का भी बोध होता है। अतएव नील-वर्ण, सर्व - व्यापकत्व और शुद्धत्व का द्योतक है। तात्पर्य यह है कि शरीर का नील-वर्ण तो आकाश - वत् सर्व - व्यापक और शुद्धता का द्योतक है तथा प्राण का कृष्ण-वर्णत्व 'पूर्ण-ब्रह्मत्व' का।

## शवोपरि-स्थिता

अर्थात् शव पर खड़ी है। इसका लक्ष्यार्थ यह है कि यह 'अनैक्य-भाव का खण्डन' करती है। अनैक्य को 'द्वन्द्वत्व' भी कह सकते हैं। इसे मार कर या हटाकर खड़ी है।

दूसरा लक्ष्यार्थ यह है कि 'शव' प्रपञ्च का द्योतक अर्थात् अचित् है। अचित् - रूप पर-चिद्-रूपिणी 'प्रकाश-शक्ति' अवस्थिता है। यह भाव चित् और अचित्-ब्रह्म में ऐक्य सिद्ध करता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि नित्य-सत्ता त्रि-विधा है--१ अपरिणामिनी, २ सम-परिणामिनी और ३ विषम-परिणामिनी। इन तीनों को १ चिन्मात्र, २ अचिन्मात्र और ३ उभय-वृत्ति भी कहते हैं। इसी उभय-वृत्ति का व्यञ्जक है चित्-शक्ति का शवाधिष्ठानत्व। 'शव' अनित्य विषम-परिणामिनी सत्ता का द्योतक है।

तीसरा लक्ष्यार्थ यह है कि परमावस्था स्वरूपावस्था से भिन्न नहीं है। इससे 'निर्विकारा' की प्रतिपत्ति है।

चतुर्थ लक्ष्यार्थ में यह भाव है कि 'शव'-रूपी अधिष्ठान का, जिसे अनित्य कह आए हैं, वस्तुतः नाश नहीं होता। यह 'शव' प्रपञ्च का द्योतक है। यही चित्-शक्ति का आधार है। इसी हेतु 'प्रपञ्चाधारा' कहते हैं। इस 'प्रपञ्चाधारा' शब्द के दो अर्थ हैं--१ 'प्रपञ्च का आधार' अर्थात् प्रपञ्च उसी ब्रह्म या 'खं ब्रह्म' से निकला है और २ 'प्रपञ्च ही जिसका आधार है' अर्थात् प्रपञ्च से हो जो जानी जा सकती है यथा कार्य से ही कारण का बोध होता है। इससे, जैसा पूर्व कहा गया है, चित् और अचित्-ब्रह्मैक्य सिद्ध होता है।

## विश्व-व्यापक-तोयान्तः - श्वेत-पद्मोपरि-स्थिता

अर्थात् विश्व-व्यापक या एकार्णव में उजले कमल पर खड़ी है। एकार्णव का भावार्थ यह है कि जगत् में जल सम्वित् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसी को 'श्रुति' में दिव्य मङ्गलालय निरतिशयानन्दामृत-सागर के रूप में उल्लेख किया है। इसी आनन्दामृत-सागर में श्वेत अर्थात् विशुद्ध या अमल तत्त्व पर आनन्द-ब्रह्म भगवती तारा स्थित हैं।

## गुरुमुन्नतोदरी

अर्थात् मोटी विशाल उदरवाली। इससे ब्रह्म के विराट् विश्व-रूप स्थूल शरीर का बोध होता है। ब्रह्म जैसे सूक्ष्म या कूटस्थ है, वैसे ही स्थूल या स्थूल-तर भी है। यह 'तारक - ब्रह्म' या 'प्रणव-ब्रह्म' है। '**गुरुमुन्नतोदरी**' प्रणव के 'अ-कार' का द्योतक है, जो विराट् विश्व स्थूल है। इससे प्रणव के विराट् विश्व-शरीर का, जो स्थूल शरीर कहा जा सकता है, बोध होता है। जिस प्रकार प्रणव के 'उ - कार' से हिरण्य-गर्भ के तेजस्-रूपी सूक्ष्म शरीर का बोध होता है, उसी प्रकार अव्याकृत प्रज्ञा-रूपी कारण शरीर का 'म-कार' से बोध होता है। अव्याकृत प्रज्ञा अनिर्वचनीया है। यह ब्रह्म के आनन्द-भोक्तृत्व-स्वरूप का बोध कराता है।

## खर्वा

अर्थात् नाटी। इसका लक्ष्यार्थ 'सूक्ष्मा' है। जिस प्रकार ब्रह्म का एक रूप विराट् है, उसी प्रकार इसका एक रूप सूक्ष्म (छोटा) भी है। भगवती जैसे बड़ी-से-बड़ी हैं, वैसे ही अणु की भी अणु हैं।

दूसरा भाव यह है कि जिस प्रकार 'काली' का भावार्थ काल-भय-नाशिनी और 'दुर्गा' का दुर्ग-विनाशिनी है, उसी प्रकार 'खर्वा' का खर्व-कारिणी है अर्थात् भगवती तारा गर्व - खर्व-कारिणी हैं। यह धर्मी का विशिष्ट गुण है। करुणा-मयी का यह स्वाभाविक गुण है कि वे मनुष्य क्या, देवता के भी अह-

ङ्कार का नाश कर उन्हें आनन्द-मय कर देती हैं। यह ठीक ही कहा है कि भगवती का भोजन 'अहङ्कार' मात्र है।

## नव-यौवनस्था

अर्थात् नित्य-युवती। यहाँ यह शङ्का होती है कि जब भगवती न बाला हैं, न युवती और न वृद्धा ही, तब ये युवती क्यों कही जाती हैं ? इसका तात्पर्य यह है कि ये परिवर्त्तन-शील नहीं हैं। अर्थात् ये काल के परे हैं। अतएव 'नव-यौवनास्था' वाक्य 'नित्य-सत्ता' के 'चित्-स्वरूप' का द्योतक है।

## पीनोन्नत-पयोधरा

अर्थात् दूध से भरे बड़े स्तनवाली। 'स्तन' आहार के भण्डार का द्योतक है। भगवती समस्त विश्व को खिलाती हैं अर्थात् पालती हैं। इससे भगवती की विश्व-पालन-कर्तृत्व-शक्ति का बोध होता है। भगवती केवल संहार या लय-शक्तिवाली नहीं हैं क्योंकि आंशिक शक्ति रखने से वे पूर्ण नहीं कही जा सकतीं। वे जैसे जगत् की सृष्टि करनेवाली हैं, वैसे ही उसकी रक्षा या पालन करनेवाली भी हैं। विश्व-मातृत्व सृजन, पालन और लय--त्रि-शक्त्यात्मक पूर्ण-ब्रह्म का द्योतक है। अतएव संक्षेप में, 'पीनोन्नत-पयोधरा' से यह तात्पर्य है कि भगवती अपने स्तन के अमृत-रूपी दूध अर्थात् तत्त्व - ज्ञान से 'अमृतत्व' प्रदान करती हैं क्योंकि 'तत्त्व-ज्ञान' से ही जीव की वास्तविक रक्षा होती है। इस प्रकार तारा 'मोक्ष-दात्री' हैं, ऐसा बोध होता है।

## व्याघ्र-चर्म्मावृता

अर्थात् बाघ के चर्म का अधो-वस्त्र है। बाघ राजस पशु का द्योतक है, क्योंकि व्याघ्र को मृग-राज कहते हैं अर्थात् वह पशुओं का राजा है। 'राजा' में रजो-भाव है और 'पशु' अज्ञानी को कहते हैं क्योंकि अज्ञानी को पशु-वत्-ज्ञान अथवा सामान्य-ज्ञान मात्र रहता है। 'पशु' बाह्य-दर्शन-प्रधान है, अतएव अज्ञान का द्योतक है, जो जीव का सबसे बड़ा वैरी है। यह अज्ञान रजो - गुण से पैदा होता है, जो ज्ञान का आवरण है। अतः 'व्याघ्र-चर्मावृता' का भावार्थ है, रजो-गुण-जन्य 'अज्ञान' का नियन्त्रण या दमन करनेवाली।

इसका दूसरा अर्थ यह है कि सत्त्व-गुण-मयी तत्त्व-ज्ञान - दायिनी ने अपने को रजो - गुणावृता कर रखा है। अज्ञान की दो शक्तियाँ हैं—१ आवरण-शक्ति और २ विक्षेप-शक्ति। ये दोनों शक्तियाँ रजो-गुण और तमो-गुण पर अधिष्ठिता हैं। इन्हीं दोनों से परमात्मा और आत्मा आवृत हैं। यहाँ यह शङ्का होती है कि परमातमा, आत्मा के समान अज्ञान से आवृत क्यों कर हो सकता है ? निश्चय ही उसमें अज्ञान नहीं है क्योंकि वह 'चित्' है। ऐसी अवस्था में पर-ब्रह्म ने केवल लीला के हेतु अपने को पर्दे के अन्दर डाल रखा है। जहाँ आत्मा अपने कर्म से आवृत है, वहाँ परमात्मा स्वेच्छा से आनन्दोपभोगार्थ अपने को आवृत किए हुए है।

## द्वीपि-चर्मोत्तरीया

अर्थात् चीते के चर्म को ओढ़े है। जिस प्रकार बाघ रजो-गुण का द्योतक है, उसी प्रकार चीता क्रूर होने के कारण तमो-गुण का द्योतक है। यह आसुरी योनि है। इसमें द्वेषी (दुष्ट) और क्रूर जीव

जन्म लेते हैं। चीते को मारकर उसके चर्म को ओढ़ना 'तमो-गुण का नियन्त्रण' है। इसके विना सत्त्व-गुण का उदय नहीं होता। व्याघ्र और चीता—दोनों क्रमशः अहङ्कार और क्रूर-भाव-रूपी राजस और तामस पशु हैं। इन्हें मार कर, इनके चर्म का वस्त्र धारण करने का यह तात्पर्य है कि भगवती ऊपर से निष्ठुर किन्तु भीतर से करुणा-मयी हैं। जैसा कि 'शक्रादि-स्तुति' में देवताओं ने कहा है—**"चित्ते कृपा समर निष्ठुरता च दृष्टा।"**

## पिंगैक-जटा

अर्थात् पिङ्ग-वर्ण की एक जूड़ेवाली। 'एक-जटा' का तात्पर्य है, केशों को एकत्र कर एक वेणी वनाना। 'केश'-शब्द का सूक्ष्म अर्थ है ब्रह्मा, विष्णु और महेश—क = ब्रह्मा, अ = विष्णु और ईश = महेश। ये तीनों क्रमशः सत्त्व, रज और तमो-गुण के अधिष्ठातृ-देवता हैं। अतएव केश से तीनों गुणों का बोध होता है। इन्हें एकत्र कर एक वेणी या जटा बनाने का तात्पर्य है, सत्त्व-गुण में रज और तमो-गुण-द्वय को सन्निहित कर एकीकरण करना। इससे 'अभेदत्व' सिद्ध होता है।

'एक-जटा' का दूसरा तात्पर्य यह है कि केशों का जब संस्कार नहीं होता, तब आपस में गुँथ कर वे 'एक-जटा' में परिणत हो जाते हैं। इससे केश-विन्यासादि विलास-विकार से भगवती रहिता हैं अर्थात् 'निर्विकारा' हैं—यह सिद्ध होता है।

भगवती भगवान् शङ्कर की जटा-वत् पिङ्ग अर्थात् पीलापन लिए धूम्र-वर्ण की हैं। यह तपस्या का द्योतक है। घोर तपस्या से जब ब्रह्माण्ड में अग्नि-शिखा प्रज्वलित होती है, तो काले केश पिङ्ग-वर्ण के दीख पड़ते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि घोर तपस्या से ही सत्त्व - गुण की प्राप्ति होती है क्योंकि उसी से रज और तमो-गुण दबाए जा सकते हैं। तीनों गुणों के द्योतक वर्णों के सम्मिश्रण से ही पिङ्ग-वर्ण बनता है।

## अक्षोभ्य-नाग-सम्बद्ध-जटा-जूटा

अर्थात् अक्षोभ्य-नाग से जटा बँधी है। यह 'अक्षोभ्य' या 'अक्षोभ्य - नाग' कौन है और इससे जटा क्यों बाँध रखी है? 'अक्षोभ्य' अर्थात् क्षोभ में न आनेवाले या क्षोभ-रहित होने से 'महा-काल' का यह नाम पड़ा। इसका पौराणिक कथानक इस प्रकार है कि 'समुद्र-मन्थन' से जब हलाहल विष उत्पन्न हुआ, तो बड़ी खलबली मची कि इसे कौन पिए? सुर और असुर दोनों घबड़ा गए। उनके आतङ्क को देख कर शङ्कर भगवान् ने उस कराल विष को पी लिया। सभी को आशङ्का हुई कि भगवान् शङ्कर को कष्ट या क्षोभ होगा, परन्तु देवाधि-देव महा-देव को क्षोभ क्यों होता? तभी से उनका नाम 'अक्षोभ्य' पड़ा। यह सर्प के रूप में 'कुण्डली-शक्ति' के द्योतक हैं।

'अक्षोभ्य' तारा-विद्या की शक्ति और ऋषि हैं। ऋषि का अर्थ है—प्रथम द्रष्टा अर्थात् सबसे पूर्व देखनेवाला। यह कुण्डली-रूप अक्षोभ्य यद्यपि स्वेच्छा - वश वलयाकार होता है, तथापि सार्ध-त्रि-वलयाकार कल्पित है। यह सार्ध-त्रि-मात्रात्मक 'प्रणव' का द्योतक है। भाव यह है कि पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी त्रि-मात्रात्मक तथा परा—अर्ध-मात्रात्मक-रूपी 'प्रणव' का द्योतक है। इसी हेतु भगवती तारा 'प्रणव-नामा' हैं।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि 'कुण्डली' मूलाधार में न रहकर शीर्ष पर क्यों है? इसका समाधान यह है कि 'मूलाधार' में 'कुण्डली' सोती रहती है अर्थात् वह अविद्या से ढँकी रहती है। भगवती तो स्वयं ऋतम्भरा प्रज्ञा हैं। उनके पास अविद्या जा नहीं सकती क्योंकि वे अविद्या का नाश करनेवाली हैं। अतएव जब जीव की प्राण-शक्ति कुण्डली, शीर्ष अर्थात् 'सहस्रार' में जाने पर ब्रह्मैक्य प्राप्त करती है और 'मूलाधार' में आते ही सो जाती है, तब भगवती की अक्षोभ्य-रूपिणी शक्ति एक क्षण को भी सुप्ता या अविद्यावृता कैसे हो सकती है? इसी से उसे शीर्ष पर दर्शाया है।

## पञ्च-मुद्रा-विभूषिता

'मुद्रा' आनन्द को देनेवाली है और इसका सूक्ष्मार्थ 'कला' भी है क्योंकि १ निवृत्ति, २ प्रतिष्ठा, ३ विद्या, ४ शान्ति और ५ शान्त्यतीता ये पञ्च-कलाएँ हैं, जिनसे सच्चे आनन्द की प्राप्ति होती है। भगवती तत्त्व-ज्ञान-दायिनी सत्त्व-गुणात्मिका हैं। अतएव निवृत्ति, प्रतिष्ठा आदि पञ्च-कलाओं का इनका आभूषण होना स्वाभाविक है।

इसका दूसरा तात्पर्य 'पञ्च-रश्मि' से भी है। पञ्च-रश्मि 'प्रणव' को कहते हैं। अतएव पञ्च-मुद्रा-विभूषिता से तात्पर्य है—'प्रणव-भूषिता' या 'प्रणव-नामा'।

इसका तीसरा गौणार्थ यह है कि भगवती तारा पञ्च-महा-भूतों से विभूषिता हैं अर्थात् वियदादि 'पञ्च-तत्त्व-स्थिता' हैं। भाव यह है कि आकाश या प्रथम तत्त्व तक ही भगवती की स्थिति है अर्थात् भगवती 'शब्द-ब्रह्म' या 'खं ब्रह्म' हैं, जिनका निर्गुण-ब्रह्म या काली भगवती में लय पञ्च-शून्य के पश्चात् अनिर्वचनीय है।

## श्वेतास्थि-पट्टिका-युक्ता

अर्थात् भगवती तारा उजली हड्डियों की पट्टिका या विशेष प्रकार के आभूषण से युक्ता हैं। यहाँ स्वतः शङ्का होती है कि चतुर्दश-भुवनेश्वरी को मणि-रत्नादि विभूषणों से विभूषिता न कह कर 'उजली हड्डियों से विभूषिता' क्यों माना गया है? इसका कारण यह है कि 'अस्थि' या 'हड्डी' प्रलय-काल में सब जीवों के गलित मांस-मज्जा आदि रूपी आवरण की द्योतक है। इन हड्डियों का वर्ण शुक्ल है। शुक्ल-वर्ण शुद्धता का द्योतक है और शुद्ध-तत्त्व सत्त्व-द्योतक है। यह प्रणव (ॐ) का वर्ण है। अतएव 'श्वेतास्थि-भूषिता' का तात्पर्य संक्षेप में सत्त्व-गुणोपेता है। भाग-लक्षणा से शुक्लास्थि की वर्ण-समानता विद्युत् से है। विद्युत् ब्रह्म है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि विद्युत् ब्रह्म-भूषिता है। विद्युत् आकाश (खं ब्रह्म) को विभूषित करती है।

## कराला या भीषणा

अर्थात् भगवती तारा सुदुर्दर्शा हैं। साधारण शब्दों में 'डरावनी' कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि भगवती नित्या विराट् सत्ता हैं, जिनसे जीवों का क्या कहना, देवता तक डरते हैं, परन्तु स्वयं ये किसी से नहीं डरतीं। इनके डर से सूर्य उदय होता है, पवन चलता है और अग्नि जलती है। इसी प्रकार संसार में समस्त छोटी-बड़ी क्रियाएँ इसी के डर से अर्थात् इसी की इच्छा-वश-वर्त्तिनी होकर होती रहती हैं। इस विशेषण से पर-ब्रह्म का ही बोध होता है। यही मूल-सत्ता या परा-शक्ति है, जिसके अधीन संसार

की सभी अपरा शक्तियाँ हैं। अतएव यह दुर्निरीक्ष्या या सु-दुर्दर्शा है। स्थूल रूप में अर्थात् बाह्य-रूप से इसका यह अर्थ है कि बड़ी डरावनी होने के कारण यह बड़ी ही कठिनता से अर्थात् विना 'वीर' बने देखी नहीं जा सकती। यह ब्रह्म का परम उग्र रूप है, जो अद्भुत भी है।

भगवती 'उग्र-तारा' कहलाती हैं। उग्र या कराल का सूक्ष्मार्थ, महा-तेजस्वी होने के कारण, दुरधि-गमत्व है। विराट् रूप भीषण या उग्र होता ही है। आकाश को भी भीषण कहते हैं। समुद्र को भी भीषण कहते हैं। अतएव भीषणत्व या उग्रत्व ब्रह्म के विराट् और तेजस्वी रूप के ही व्यञ्जक हैं।

## दंष्ट्रा-कोटि-समुज्ज्वला

अर्थात् चमकती हुई दशन-पंक्तिवाली, जिससे ललज्जिह्वा अर्थात् लपलपाती जिह्वा को दावकर रखा है। उज्ज्वल अर्थात् शुभ्र चमकते हुए का तात्पर्य स्व-प्रकाश सत्त्व-गुण है। इससे रजो-गुण-सूचक लाल जिह्वा को दाब रखा है अर्थात् सत्त्व-गुण से रजो-गुण का नियन्त्रण कर रखा है। ललज्जिह्वा 'नित्य प्रकाश' को द्योतक है।

## त्रि-नयना

अर्थात् चन्द्र, सूर्य और अग्नि-रूप वाम, दक्षिण और मध्य—भ्रू-मध्य में तीन नेत्रवाली। इस पद के कई तात्पर्य हैं।

पहला तात्पर्य है—अन्तर्यामिनी क्योंकि चन्द्र, सूर्य और अग्नि ये तीनों सर्व-साक्षी हैं। इससे भगवती तारा 'सर्व-साक्षी' या 'अन्तर्यामिनी' हैं, ऐसा बोध होता है।

दूसरा तात्पर्य यह है कि चन्द्र, सूर्य और अग्नि इच्छा-ज्ञान-क्रिया—इस 'त्रि-शक्ति' के द्योतक हैं। अतएव इच्छा आदि त्रि-शक्तियों को धारण करनेवाली ब्रह्म-रूपिणी 'चित्-शक्ति' ही हो सकती है।

तीसरा भाव यह है कि चन्द्र सृष्टि का, सूर्य स्थिति का और अग्नि संहार या लय का द्योतक है। अतएव इससे यह बोध होता है कि तारा 'सृष्टि-स्थिति-संहार-कारिणी' हैं।

चौथा तात्पर्य त्रिकालज्ञता से है, जिसके अनुसार भगवती अनादि 'सर्व-व्यापिनी नित्य सत्ता' हैं क्योंकि भूत-काल को देखनेवाली होने से 'आद्या' अर्थ होता है अर्थात् भगवती अनादि हैं वर्तमान को देखनेवाली होने से वे सर्व-व्यापिनी हैं और भविष्य को देखनेवाली होने से नित्य-सत्ता हैं।

पाँचवाँ तात्पय यह है कि तीनों नेत्रों से भगवती क्रमशः तीनों मण्डलों अर्थात् तीनों लोकों को देखती हैं। तीनों लोकों का सूक्ष्मार्थ है—ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयात्मक त्रिलोक या भुवन-त्रय। इन्हें देखती हैं अर्थात् अभेद-भाव दिखलानेवाली 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' हैं।

छठा तात्पर्य यह है कि त्रिनेत्र से त्रिपुटी, शुद्ध त्रिपुटी—प्रमातृ, प्रमाण और प्रमेय का बोध होता है। इससे त्रिनेत्र का यह अर्थ सिद्ध होता है कि भगवती स्वयं प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय हैं अर्थात् ब्रह्म हैं, जिनके अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ नहीं है।

सातवें तात्पर्य के अनुसार 'त्रिनेत्र' से त्रिविधात्मा की ऐक्य-कारिका विद्या का बोध होता है। आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—ये ही तीन प्रकार की आत्माएँ हैं। ये क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिव (महेश्वर) हैं।

सोम-सूर्यानलात्मक त्रिनेत्रों का आठवाँ सूक्ष्मार्थ मातृका-मन्त्र के त्रि-खण्डों का द्योतक है। त्रि-खण्ड की अधिष्ठात्री देवता हैं— १ सावित्री, २ गायत्री और ३ सरस्वती या १ महा-काली, २ महा-लक्ष्मी और ३ महा-सरस्वती। ये (शब्द- ब्रह्म या 'खं ब्रह्म') की ऋक्, साम और यजुस्-रूपी त्रि-शक्तियों के द्योतक हैं।

नवाँ तात्पर्य यह है कि त्रि-नेत्र या त्रि-दर्शन से अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—इन तीनों दर्शनों का बोध होता है, जिनके द्वारा यह 'परा विद्या' प्रतिपादित है।

## चतुर्भुजा

चारों भुजाओं में क्रमशः—१ खड्ग, २ कर्त्तरिका, ३ कपाल और ४ कमल हैं। इन चारों के तात्पर्य क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

'खड्ग' वि-कोष है अर्थात् आवरण-रहित या अपरिच्छिन्न है। तात्पर्य कि परिच्छिन्न या निष्क्रिय नहीं है। यह 'तत्त्व-ज्ञान' का द्योतक है, जिससे भगवती अज्ञान का नाश करती हैं। अर्थात् पुण्य और पाप-रूपी पशु-द्वय का संहार कर मोक्ष देती हैं। भाव यह है कि कर्म-बन्धन को, जो पाप और पुण्य-जनित ही है, ज्ञान-रूपी खड्ग से काटती हैं। इससे आध्यात्मिक ताप का नाश होता है।

'कर्त्तरिका' (कैंची) से भगवती तारा क्षुद्र अर्थात् आधि-भौतिक और आधि-दैविक 'ताप - द्वय' का नाश करती हैं। जहाँ छोटे-छोटे स्थानों में 'खड्ग' से प्रहार नहीं हो सकता, वहाँ 'कैंची' से ही काम लिया जाता है। इसे ज्ञान-रूपिणी स्फूर्ति भी कह सकते हैं। इसका समन्वय आद्या की 'अभय-मुद्रा' से हो सकता है।

'कपाल' (खोपड़ी) तत्त्व - ज्ञानाधार विगत-रजो-द्योतक है। कपाल' की उपयोगिता है पान में। रुधिर या रक्त-रूपी रजो-गुण या मोह का तारा पान करती हैं। अर्थात् जीव (भक्त) के मोह का नाश करती हैं। 'कमल' (पुष्प) का समन्वय 'वर-मुद्रा' से है। सर्व-श्रेष्ठ वर या कृपा चित्त को निर्मल करना है। 'कमल' का विशेषण अमल है।

चारों आयुधों का संक्षेप में यह भी भाव है कि इनसे भगवती—१ लय, २ विक्षेप, ३ कषाय और ४ रसास्वाद-रूपी चारों विघ्नों का नाश करती हैं। ये विघ्न-चतुष्टय 'निर्विकल्प समाधि' के बाधक हैं। इन चारों विघ्नों की परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

१ चित्त की खण्डाकार-वृत्ति अर्थात् पूर्ण द्वैत-भाव की निष्क्रिय अवस्था को 'लय' कहते हैं अर्थात् चित्त की जड़ता 'लय' है। 'लय' दो प्रकार का होता है—१ वाञ्छित अर्थात् इष्ट और २ अवाञ्छित या अनिष्ट। प्रथम कल्याणकारी है और दूसरा अकल्याणकारी। यही दूसरा 'लय' विघ्न-स्वरूप है। प्रथम 'लय' है परमानन्द में चिर-काल अर्थात् अनेक जन्मों में अष्टाङ्ग - सहित निर्विकल्प समाधि के अभ्यास से 'लय'। और दूसरा है मूर्च्छावस्था-जैसा आलस्य-वश स्तब्धी-भाव-लक्षण निद्रा-रूप।

२ विषय में राग ही, जो चित्त की बहुर्मुखी वृत्ति है, 'विक्षेप' कहलाता है।

३ अखण्डाकार वस्तु के ग्रहण में प्रवृत्त होने पर पूर्व-जन्मार्जित कु-संस्कारों से स्तब्धी-भाव को 'कषाय' कहते हैं। अर्थात् सजातीय प्रवाह को भङ्ग कर देनेवाला विघ्न 'कषाय' है।

४ सविकल्पानन्द या बाह्य-प्रपञ्च की निवृत्ति से आनन्द अर्थात् चित्त-वृत्ति की बहिर्मुखता के हटने से जो आनन्द होता है, उसी को 'रसास्वाद' कहते हैं। यह ब्रह्मानन्द अर्थात् अन्तर्मुखी आनन्द से

भिन्न है। अतएव ब्रह्मानन्द-प्राप्ति में बाधा करता है। अर्थात् अपूर्ण आनन्द से पूर्णानन्द की प्राप्ति के मार्ग में विघ्न होता है।

## मुण्ड-माला

पचास मुण्डों अर्थात् कटे शिरों की माला। यह पचास वर्णों की द्योतक है। इसका यह तात्पर्य है कि भगवती तारा ऊपर से 'शब्द-ब्रह्म' है।

## अट्टाट्ट-हासा

अर्थात् भगवती अट्टाट्ट-हास करती रहती हैं। इससे यह बोध होता है कि भगवती 'सदानन्द-मयी' या 'आनन्द-ब्रह्म' हैं। यह तो लौकिक व्यवहार में सर्वत्र और सर्वदा बिना अपवाद के देखा जाता है कि आनन्द मात्र से हँसी आती है। 'अट्टाट्ट-हास' बड़ी जोर की हँसी को कहते हैं। अतएव यह परमानन्द का बोधक है। इससे भगवती जगत् को अभय-दान देती हैं। आनन्द-मय करुणा-मय होता ही है। क्रूर, द्वेषी और कृपण हँस-मुख नहीं रहते। ये सदा गम्भीर या निरानन्द-मुखाकृति के होते हैं। अतएव करुणा-मयी तारा करुणा की धारा बहा कर जगत् को अभय का वरदान दे रही हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि संशय-रहित अर्थात् प्रमाण-गत और प्रमेय-गत संशय से रहित व्यक्तियों को ही भगवती अभय देती हैं।

दूसरा तात्पर्य 'अट्टाट्ट-हास' की ध्वनि भी है, जिससे अखिल चराचर जगत् व्याप्त है। यह नाद है, जिसका तत्त्व 'सदाख्य' है। यह नाद-ब्रह्म प्रणव-संलग्न भी है। इसी हेतु ज्योतिर्मयात्मक है। अतएव अर्ध-चन्द्राकार है। यह विन्दु-सा है, जिसका आकार पूर्ण-चन्द्र जैसा है। यह नाद अनेक प्रकार का है। घोर-से-घोर और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म-तर। 'अट्टाट्ट-हास' इसी 'महा-नाद' का व्यञ्जक है, जो ब्रह्म-प्रणव-रूपिणी तारा भगवतो का ज्योतिर्मय सन्धान-स्वरूप है। यह ब्रह्म-प्रणव नाद भी है। इसमें असंख्य नाद और विन्दु भी लय होते हैं।

यहाँ यह शङ्का होती है कि जब विन्दु से नाद हुआ है, तब विन्दु नाद में लीन किस प्रकार होगा? इसका समाधान यह है कि विन्दु तीन प्रकार का है— १ स्थूल, २ सूक्ष्म और ३ पर। यहाँ विन्दु से तात्पर्य स्थूल और सूक्ष्म-द्वय मात्र से है। अतएव 'अट्टाट्ट-हास' का सूक्ष्मार्थ 'ब्रह्म-प्रणव-सन्धान' और 'ब्रह्म-प्रणव-नाद' दोनों है।

तीसरा तात्पर्य 'अट्टाट्ट-हास' के व्यङ्गार्थ से बोध होता है। भगवती हँसती हैं, क्यों? हमारे अज्ञान पर हँसती हैं। हम आनन्द-स्वरूप होकर भी व्यर्थ रोते हैं, कलपते हैं और विक्षिप्त - वत् आचरण करते हैं; जिसमें हँसना उचित है, उसमें मोह-वश रोते हैं और जिसमें रोना उचित है, उसमें हँसते हैं; हम माया के बन्धन पर आनन्दित होकर हँसते हैं और माया-बन्धन के अभाव पर रोते हैं। इसी अज्ञान पर आनन्द-मयी माँ तारा हँसती हैं। हम भी तो ऐसा ही करते हैं। नादान बच्चों की गुड़ियों के टूट जाने से उनके रोने पर हम उन पर हँसते ही हैं।

## अष्ट-नाग-विभूषिता

इस विशेषण के भी कई तात्पर्य हैं। प्रथम यह अणिमा, लघिमा आदि अष्ट-सिद्धियों का द्योतक है। नाग - रूपी इन सिद्धियों को तारा धारण करती हैं। इसका तात्पर्य है—भगवती की 'अष्ट - सिद्धि-

दातृत्व-शक्ति', परन्तु नाग या विष-धर की आकृति होने से इनका अवाञ्छितत्व बोध होता है क्योंकि ये सिद्धियाँ परम-पद की प्राप्ति में बाधक होने से त्याज्य हैं।

दूसरा भाव यह है कि भगवती तारा 'अष्ट-नाग'-रूपी--१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान और ८ समाधि से विभूषिता हैं।

तीसरा भाव है कि ये अष्ट-नाग अष्टधा प्रकृति के द्योतक हैं। अष्टधा प्रकृति को धारण करनेवाली चित्-शक्ति है।

## पदार्थ-दष्ट्रा-द्वय-विराजमाना

अर्थात् पदार्थ-रूपी ऊपर से नीचे-दोनों बाहर निकली हुई दशन-पंक्तियोंवाली। दशन-पंक्तियाँ पदार्थ-व्यञ्जक हैं। ऊपर और नीचेवाली दोनों पंक्तियाँ अध्यारोप और अपवाद-व्यञ्जक हैं तथा प्रकटित होने से शोधित हैं, ऐसा बोध होता है। इससे अखण्डाकाराकारिता चित्त-वृत्ति अर्थात् 'विशुद्ध चित्-शक्ति' बोध होता है।

## चन्द्रार्ध-कृत-शेखरा

अर्थात् ललाट के ऊपर चन्द्र-कला को धारण करनेवाली। ललाट के ऊपर से तात्पर्य है, सहस्रार-स्थित ब्रह्म-रन्ध्र के नीचे और ललाट या आज्ञा-चक्र के ऊपर सोम-मण्डल से, जहाँ से अमृत की धारा गिरती है। यह 'चन्द्र' भूत-चन्द्र नहीं है, किन्तु चिच्चन्द्र है। इससे भगवती के अमृतत्व का, जो ब्रह्म का लक्षण है और अमृत-करत्व अर्थात् अमर करनेवाली होने का बोध होता है।

## प्रत्यालीढा

अर्थात् बाँयाँ पैर आगे और दाहिना पीछे करके भगवती खड़ी हैं। इसका तात्पर्य यही है कि यह नियन्त्रण करने की एक विशेष मुद्रा है। यह 'सक्रिय-ब्रह्म' का लक्षण है। गति में, जो गमन - शील क्रिया है, स्त्री या शक्ति का बाँयाँ पैर ही उठता है। इस मुद्रा से तमो-गुण और रजो-गुण का दमन करके भगवती सत्त्वावस्था में खड़ी हैं, यह बोध होता है।

**साधारण ध्यानों के निष्कर्ष का यह सूक्ष्म भाव है। मन्त्र-भेद और कामना-भेद से 'ध्यान' के अनेक भेद हैं। एक उदाहरण यह है कि ब्रह्मणोपासिता भगवती के मन्त्र-'ॐ त्रीं ह्रीं हूं ह्रीं हूं फट्' के ध्यान में आंशिक भेद है। इस मन्त्र के अनुसार ध्यान इस प्रकार है :-**

'श्वेताम्बरां चन्द्र-कान्ति चन्द्रार्ध-कृत-शेखराम्' इत्यादि

**अर्थात् 'शार्दूल-चर्माम्बरा' के बदले 'श्वेताम्बरा' और 'नवाम्बुदाभा' (नील) के बदले 'चन्द्र-कान्ति' (उज्ज्वल-ज्योतिर्मय) की है। बस, इतना ही भेद है। यह भेद मन्त्र-जन्य है। मन्त्र-भेद कामना-जन्य होता है। कामना-भेद या कर्म (षट्-कर्म) भेद से वर्ण (रङ्ग) भेद होता है।**

**यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि निराकारा भगवती के विविध ध्यान अपनी-अपनी रुचि और प्रयोजन के अनुसार कल्पित हुए हैं। हम जिस प्रकार मां को देखते हैं, वे हमारे लिए उसी प्रकार की हैं। हमारी भावना के अनुसार ही मां फल देनेवाली हैं। अतएव ध्यानावबोध में तर्क का स्थान नहीं है। ध्यान से ब्रह्म-ज्ञान या ब्रह्म-दर्शन होता है।**

परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी महाराज, दतिया के निबन्ध के आधार पर—

# श्रीतारा महा-विद्या

शून्यस्थामति-तेजसां च दधतीं शूलाब्ज-खड्गं गदाम्,
मुक्ता-हार-सुबद्ध-रत्न-रशनां कर्पूर-कुन्दोज्ज्वलाम् ।
वन्दे विष्णु-सुरेन्द्र-रुद्र-नमितां त्रैलोक्य-रक्षा-पराम्,
नीलां तामहि-भूषणाधि - वलयामत्युग्र - तारां भजे ।।

नाना योनियों में अविद्या-वश घूमते हुए जीवों को अनेक क्लेशों से अनवरत सन्तप्त देखकर, परम करुणा-मयी जगन्माता श्रीतारा-रूप से, उनको भव-सिन्धु से तारती हैं। अतः उन्हें 'तारा' नाम से साधक-समुदाय पुकारता है। इसीलिए कहा गया है—'उग्रापत्-तारिणी यस्मादुग्र-तारा प्रकीर्तिता'।

एक समय श्री पार्वती ने श्री शङ्कर से पूछा—'हे सर्वेश्वर ! सर्व-रहस्याभिज्ञ ! विश्वात्मन् ! वह कौन-सी विद्या है, जिसे प्राप्त कर परम विद्वान् व्यास मुनि ने भारतादि-ग्रन्थों का निर्माण किया ?'

उत्तर में श्री शङ्कर ने कहा—'हे पार्वति ! श्रीतारा महा-विद्या के प्रभाव से ही व्यास मुनि ग्रन्थ-रचना में समर्थ हुए थे। हे गिरि-नन्दिनि ! 'तारा' महा-विद्या अज्ञान-रूपी इन्धन के लिए 'अग्नि-स्वरूप' है, जिसे प्राप्त कर 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' चारों पदार्थ अनायास ही मिल जाते हैं। इस विद्या के प्रभाव से कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है। श्रीतारा का साधक 'काव्य-कला' में प्रवीण होकर गङ्गा-प्रवाह के सदृश कविता करता है, राजा को वश में कर रखता है, सभा में वाद उपस्थित होने पर प्रति-वादी की वाणी का स्तम्भन कर सकता है। इस विद्या के आराधन से अनेक अद्भुत चमत्कार साधक में आ जाते हैं। कहाँ तक कहें, श्रीतारा-मन्त्र के ज्ञान मात्र से साधक सर्वज्ञ हो जाता है।'

श्रीतारा के अनेक मन्त्र तथा साधना-प्रकार हैं, तथापि तीन भेद ही मुख्य माने जाते हैं। प्रणव (ॐ), माया (ह्रीं), वधू (स्त्रीं), कूर्च (हूं) और अस्त्र (फट्) अर्थात् 'ॐ **ह्रीं स्त्रीं हूं फट्**'—तारा भगवती की पञ्चाक्षर महा-विद्या है। '**ह्रीं स्त्रीं हूं**'—इस त्र्यक्षर को 'नील-सरस्वती' कहते हैं। यही 'तारा कुल्लुका' नाम से प्रख्यात है। '**ह्रीं स्त्रीं हूं फट्**'—मन्त्र को 'एक-जटा तारा' कहते हैं। किसी-किसी के मत से '**स्त्रीं**' बीज के स्थान पर '**त्रीं**' वीज माना जाता है, परन्तु यह विद्या वसिष्ठ मुनि से शप्त होने के कारण शीघ्र-फलदा नहीं है, किन्तु 'तारा-भक्ति-सुधार्णव' में कहा है कि कृष्ण-अवतार होने पर यह विद्या शाप से मुक्त हो जाएगी। इन विद्याओं के और भी कई भेद हैं, तथापि साधक-समुदाय में इन्हीं का विशेष प्रचलन है।

'मन्त्र-महोदधि' में श्रीतारा के कई भेद बताए गए हैं। श्री ब्रह्मा ने श्रीतारा की जिस मन्त्र से आराधना की थी, उसे 'सप्ताक्षर' कहते हैं। दूसरी विद्या 'द्वादशाक्षर' है, जिसकी सिद्धि बौद्ध-मार्ग से होती है। 'सप्ताक्षर' के पाँचवें वर्ण के स्थान पर 'सौं' वीज लगाकर भगवान् बलराम ने आराधन किया था। '**त्रीं हूं फट् क्लीं ऐं**'-इस 'पञ्चाक्षर' को नारायण ने जपा था। '**ॐ ह्रीं हूं ह्रीं हूं फट्**' इस 'षडक्षरी विद्या' को सूर्य ने अदिति को प्रदान किया था। श्री शङ्कर जी कहते हैं कि—'**स्त्रीं हूं ह्रीं हूं फट्**'-इस पञ्चाक्षर को जप कर मैंने जालन्धर को मारा था। **[शेष पृष्ठ २३ के नीचे]**

परम पूज्य स्वामी श्रीप्रत्यगात्मानन्द सरस्वती के निबन्ध के आधार पर—

# तारा-तत्त्व

माँ तारा, स्वरूपतः **'तार'-बीज** या ॐ-कार-रूपा हैं। उनकी विभिन्न क्रियाएँ हैं। वे 'त्रिपुरादि' अर्थात् तीन पुरों जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, 'अ-उ-म्'—मात्रा-त्रय, वहिः-प्रज्ञ, अन्तः-प्रज्ञ, घन-प्रज्ञ इत्यादि समस्त 'त्रिपुर-दुर्गों' अथवा 'दुर्गम व्यूहों' की गहन ग्रन्थियों को नष्ट कर देती हैं।

'मन्त्र-समूह' की विषमता अर्थात् रूप और छन्द की प्रतिकूलता अथवा कुलाकुल आदि चक्रों के विचार के अनुसार मन्त्र की शत्रुता या प्रतिकूलता अथवा उच्चारण-दोष से **'छन्द-त्रुटि-जन्य'** जो वाधा उत्पन्न होती है, वह माँ तारा की कृपा से नष्ट हो जाती है।

माँ तारा की कृपा केवल उक्त वाधा को दूर करने तक सीमित नहीं रहती अपितु उनको कृपा से 'मन्त्र' में चेतनता की प्राप्ति भी होती है। अतः अभीष्ट-सिद्धि में **'वस्तु-जन्य'** जो रुकावट आती है, उसका भी निवारण हो जाता है।

इन सबके अतिरिक्त माँ तारा साधकों की अल्प शक्ति-क्षुद्र गति को तीव्र कर, उन्हें उनकी सीमित स्थिति से आगे बढ़ाती हैं। इस प्रकार **'देश-निमित्त'** बाधा को भी वे दूर करती है। भगवान् सनत्कुमार ने जैसे नारद को क्रमशः 'भूमा' अर्थात् परम पद तक पहुँचाया था, उसी प्रकार माँ तारा साधक की अल्पज्ञता दूर कर उसे 'ब्रह्मज्ञ' बनाती हैं। अतएव **'काल-निमित्त'** जो वाधा या प्रतिरोध है, उसको दूर कर साधक को विकास, प्रकाश एवं उल्लास की पूर्णता प्रदान करती हैं।

माँ तारा एक विशेष मुद्रा में शिव जी के वक्ष पर पैर रख कर खड़ी दिखाई देती हैं। इसका रहस्य क्या है? वे **'प्रत्यालीढ़-पदा'** है अर्थात् शत्रु-भाव आदि दोषों को नष्ट करने के लिए वे समुचित क्रम से सजे हुए मन्त्राक्षर-रूपी पैरोंवाली होकर, वैखरी वाक् के बाद मध्यमा, पश्यन्ती इत्यादि में वाक्, मन और प्राण—इन सभी की गति के द्वारा प्रविष्ट होती हैं। अतः अपने पैरों की विशेष मुद्रा से वे 'मन्त्र' के एक विशिष्ट रूप को सूचित करती हैं। मन्त्राक्षर-पदों के इस प्रकार विशिष्ट रूप में विन्यस्त होने के कारण, वे वाक् का जो स्थूल **'वैखरी'**-रूप है, उसका परित्याग करके वाक् के परम-रूप—**'परा-वाक्'** की ओर धावित होती हैं। 'परा-वाक्' की ओर उनकी यह गति कहीं 'मध्यमा', कहीं 'पश्यन्ती' इत्यादि क्रम से अथवा कहीं साक्षात् अ-क्रमिक भाव से होती है।

अस्तु, माँ तारा अपने नाम के अनुरूप साधक की ग्रन्थियों का विदारण करती हैं। 'मन्त्र' की विषमताओं का हरण करके, चैतन्यत्व की प्रतिष्ठा करती हैं। साधक के क्षुद्रत्व या अल्पत्व का हरण करके, भूमाऽभिमुखी गति अर्थात् परम पद की प्राप्ति कराती हैं। साथ ही परिशेष में, वाक् की परम अवस्था में ले जाती हैं।

---

**[पृष्ठ २२ का शेषांश]**

तारा के पञ्चाक्षर मन्त्र **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'** के प्रथमाक्षर 'ॐ' से ब्रह्म-रूपता सिद्ध होती है। इसे ही तत्त्व-स्वरूपिणी 'सोहं-विद्या' कहते हैं। 'ह'-कार से प्रकाश-मानता, रेफ (र-कार) से अज्ञान की निवृत्ति और इन दोनों से विन्दु-युक्त 'ई'-कार के मिलने पर 'ह्रीं' वीज तन्त्र-शास्त्राभिमत होता है। इस एक के अभ्यास से कविता, ज्ञान आदि सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। 'त'-कार सभी पापों का विनाशक, रेफ तत्त्व का और विन्दु-युक्त 'त्रीं' या 'स्त्रीं' महा-वीज शब्द-ब्रह्म-तत्त्व का प्रकाशक, 'हूं' ज्ञान-स्वरूप और 'फट्' जड़ता या मूर्खता का विनाशक है।

# भगवती तारिणी का विलक्षण स्वरूप

पण्डित दुर्गाशङ्कर मिश्र

दश-महा-विद्याओं में भगवती तारिणी या द्वितीया महा-विद्या का स्वरूप अपनी अलग ही विशेषता रखता है। वह जहाँ भक्तों के चित्त को आनन्द-मग्न कर देता है, वहाँ उसकी प्रत्येक छवि गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों का उद्घाटन करती है।

माँ तारा के विभिन्न ध्यानों के अनुसार—**भगवती तारिणी के शरीर का वर्ण नवोदित सूर्य के प्रकाश-मण्डल-जैसा है, तीन सुन्दर नेत्रों से वे सुशोभित हैं और जलती हुई चिताओं से युक्त श्मशान में वे विराजित हैं। उनके दंष्ट्रा अति ही भयावह हैं और नर-मुण्डों की माला से सजा हुआ उनका शरीर सचमुच ही अत्यन्त घोर है। आकार में अति ही विशाल, स्थूल उदरवाली वे कमर में व्याघ्र-चर्म लपेटे हुए हैं। वे नव-यौवन-वती और चतुर्भुजा हैं। जिह्वा उनकी लपलपा रही है और वे बड़ी भयङ्कर तथा वर-दायिनी हैं। उनके दाहने हाथों में खड्ग और कैंची है और बाएँ हाथों में कमल तथा मुण्ड। मस्तक पर अक्षोभ्य शिव से विभूषित वे प्रसन्न मुखवाली नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं। संसार-व्यापी सागर के मध्य में स्थित श्वेत-कमल के ऊपर वे विराजमान हैं।**

इस प्रकार स्पष्ट है कि भगवती तारिणी का स्वरूप न केवल भयङ्कर है, अपितु मनोहारी भी है। इसका मतलब यही है कि सज्जनों और भक्तों को तो वे सदा सुख और आनन्द में मस्त रखती हैं, परन्तु दुर्जनों और नास्तिकों की दुर्बुद्धि एवं अनाचार का वे नाश कर डालती हैं। दूसरे शब्दों में भगवती तारिणी सज्जनों और दुर्जनों दोनों का ही कल्याण-साधन करती हैं।

हमारे जैसे साधारण जन उपर्युक्त भाव से ही माँ तारा का ध्यान कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। फिर भी, यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त ध्यान का बहुत कुछ रहस्य भी है। उसका विवेचन योग्य अधिकारी ही कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए उक्त ध्यान से ज्ञात होता है कि भगवती तारिणी के चार हाथों में क्रमशः १ खड्ग, २ कैंची, ३ कमल और ४ मुण्ड शोभायमान हैं। स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि ये किस भाव के द्योतक हैं। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि 'खड्ग' से माँ तारा अविद्या का नाश करती हैं—अपने भक्तों के बड़े-से-बड़े सङ्कटों का संहार करती हैं और 'कैंची' से वे उन आधि-व्याधियों का निर्मूलन करती हैं, जिनका नाश 'खड्ग'—जैसे शस्त्र से सम्भव नहीं। उदाहरण के लिए अष्ट-पाशों के काटने में 'कैंची' विशेष महत्त्व के साथ काम दे सकती है। 'मुण्ड' या 'खोपड़ी' में तारा पान करती हैं, इससे आशय है कि वे भक्त के मोह को दूर करती हैं। 'कमल' पुष्प, हृदय में निर्मलता और शान्ति उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार 'मौली अक्षोभ्य-भूषितां' से जो यह दिखाया गया है कि अक्षोभ्य शिव भगवती तारा के जटा-जूट में स्थित हैं, उसका भाव यह निकलता है कि महा-काल सर्वतः जगदम्बा के अधीन हैं। दूसरे अक्षोभ्य = नाग = कुण्डलिनी से यह प्रगट होता है कि 'कुण्डलिनी' जब 'सहस्रार' में पहुँचती है, तभी परमावस्था की प्राप्ति होती है और जब वह 'मूलाधार' में रहती है, तब वह सुप्त हो जाती है। भगवती की अक्षोभ्य-रूपिणी 'कुण्डलिनी'-शक्ति सर्वदा शीर्षस्थ सहस्रार में ही वर्तमान रहती है।

इसी क्रम से सभी लक्षणों के दार्शनिक भाव अनुभव में लाए जा सकते हैं। इन भावों के सतत चिन्तन से साधक के मानसिक धरातल की विलक्षण रूप से उन्नति होती जाती है और वह सहज ही परमानन्दावस्था को प्राप्त कर लेता है।

# मां तारा

'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित

भगवान् शङ्कर ने माँ का नाम-करण **'तारा'** इन दो अक्षरों से किया है। साधक इन्हें **'द्वितीया'** के नाम से पुकारते हैं। भगवती तारा की उत्पत्ति का प्रसङ्ग पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं है, परन्तु 'देवासुर संग्राम' में भगवान् शङ्कर ने 'तारा' नाम से, 'काली' का पूजन किया था।

भगवती तारा के ध्यान के सम्बन्ध में तन्त्र-वचन है कि--**"सम्पूर्ण संसार को जल-मग्न देखे। जल और आकाश के मध्य में, जल के ऊपर श्वेत कमल देखे। श्वेत कमल को कर्णिका पर अष्ट-चिता-युक्त महा-श्मशान की भावना करे। श्वेत कमल को कर्णिका के मध्य में, शव के मस्तक पर वाम - पाद, जाँघ पर दक्षिण-पाद - प्रत्यालीढ-रूप से, नील-वदना, गोल-गोल रक्त नेत्रवाली, भक्त की पुकार को सुनकर समाधि से जागी हुई, कैंची, खड्ग, मद्य-पूर्ण कपाल-पात्र, चौथे हाथ में नील कमल धारण किए, हाथ-पैर-कण्ठ-कटि-कर्ण-मस्तक पर और जनेऊ-रूप में आठ महा-नागों का आभूषण पहने हुए, माथे पर कोटि सूर्य के सदृश रक्त-गौर कान्ति एवं अक्षोभ्य-नाग से सुशोभित भगवती तारा का ध्यान करे।"**

भगवती तारा के इस ध्यान से साधक के जन्म-जन्मान्तरीय दुष्कृत भस्म हो जाते हैं।

तन्त्र-ग्रन्थों का उद्धरण है कि--**"पीली जटावाली, कटि पर चीते का चर्म लपेटनेवाली, माथे पर श्वेत हड्डी का मुकुट धारण करनेवाली, हँसती हुई, उत्तुङ्ग दृढ़ कुचों से साधकों को तृप्त करती हुई, गले में अन्योन्य केश-वत् ग्रथित पचास मुण्डों की जय-माला धारण करनेवाली"** भगवती तारा का जो ध्यान करता है, वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। शीघ्रता से सिद्धि देने के कारण इनको 'महोग्रा' भी कहते हैं।

भगवती तारा के 'साधन का स्थान'--**श्मशान, शव, वार-वनिता का गृह, पर्वत की गुफा या समुद्र का तट है।**

भगवती तारा के नौ 'पीठ-देवता' इस प्रकार हैं--**१ मेधा, २ प्रज्ञा, ३ प्रभा, ४ विद्या, ५ धी, ६ धृति, ७ स्मृति, ८ बुद्धि, ९ विद्येश्वरी।** पहले 'पीठ' को हृदय में स्थापित करे, तब भगवती तारा का उस पर आह्वान करे। अन्य ग्रन्थों में, शङ्कर भगवान् ने—**१ इच्छा, २ ज्ञान, ३ क्रिया, ४ कामिनी, ५ रति, ६ रति-प्रिया, ७ नन्दा, ८ मनोन्मनी** आदि को भगवती तारा की 'पीठ-देवता' बताया है, परन्तु मेधादि पूर्वोक्त नौ 'पीठ-देवता' ही साधना में प्रधानतया प्रचलित हैं।

'ऋग्वेद' के प्रसिद्ध 'सरस्वती-सूक्त' में ऋषि-गणों ने 'मेधा' को प्रधान 'धन' माना है। कारण इसके अतिरिक्त सभी 'धन' स्व-अस्तित्व से पृथक् रहनेवाले पदार्थ हैं और इनके द्वारा रजो - गुण तथा तमो-गुण दोनों की वृद्धि होती है। इसके विपरीत 'मेधा' मनुष्य की 'प्रज्ञा' में स्थित होने के कारण, उसके द्वारा सर्व-धन-रूपी 'स्वात्म-सुख' की प्राप्ति होती है।

अतः देव-पितृ-गण सदैव 'मेधा' की चाह करते हैं। 'ऋग्वेद' का 'सरस्वती-सूक्त' कहता है—

"...हे अग्नि ! जिस 'मेधा' की देव-पितृ-गण सदा चाह करते हैं, उस मेधा को आज ही देकर मुझे मेधावी करिए। राजा वरुण, सरस्वती देवी और कमलों की माला धारण करनेवाले दोनों अश्विनी-

कुमार मेरी मेधा की रक्षा करें। अपरिमित जल-धाराओं से युक्ता, शताधिक प्रवाहोंवाली, कभी भी क्षय न हो—ऐसी मेधावाली, सम्पूर्ण शास्त्रों की ज्ञाता, विद्याओं के उपदेश से शिष्यों की पालन-कर्त्री, सम्पूर्ण शाखा-शाखान्तरीय ज्ञान-समूहों में ऐक्य कर समझानेवाली वाणी की जनयित्री, हे रोदसी, पृथ्वी ! हम आपकी स्तुति करते हैं। अज्ञान-रूपी असत्य का छेदन करने के लिए हमें सत्य-स्वरूपा वाणी प्रदान करो।

उस वाणी की हम स्तुति करते हैं, जो चेतना-रहित ज्ञान-शून्यों के हृदय में ज्ञान - तन्तुओं का विकास करती हुई विकसित होती है, जो चारों प्रकार से अच्छी तरह दुग्ध का दोहन कर प्रकाश और बल की वृद्धि करती है, जिसकी उत्कृष्टता की थाह ही नहीं प्राप्त होती। हम वाणी-रूपी उस महा-धेनु की स्तुति करते हैं, जिसे रात-दिन निरन्तर देखते हुए भी हम नहीं देख पाते, जिसे निरन्तर सुनते हुए भी नहीं सुन पाते। सदा हमारे शरीर में व्याप्त होते हुए भी, जिसको हम जान नहीं पाते।…"

कहाँ तक लिखा जाए ? ऐसी उत्कृष्ट भावुकता से भरे हुए 'मेधा' आदि पीठ-देवता के मन्त्र वेदों में जगह-जगह वर्णित हैं। ये मन्त्र उपदेश देते हैं कि इन्हीं पीठ-देवताओं से धन, पुत्र, यश, राज्य, ऐश्वर्य, सम्मान, ज्ञान, ब्रह्मत्व आदि की प्राप्ति होती है।

'पुराण' एवं 'तन्त्र' में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि भगवती तारा ने क्षुधार्त होकर भगवान् शङ्कर को भक्षण कर लिया। तब भगवान् शङ्कर ने स्वयम्भू-लिङ्ग से आविर्भूत होकर, तारा के मस्तक पर आसीन होकर, संसार को दर्शन दिया। उस समय सरस्वती ने अहङ्कार-वश 'ईश्वरो नास्ति' इस नास्तिक दर्शन का प्रादुर्भाव कर संसार को मुग्ध किया, जिससे 'जैन', 'बौद्ध' प्रभृति मत-मतान्तर विकसित हो गए। यह वही समय था, जब 'आस्तिक-वाद' में संशय खड़ा हो गया। अतएव कथानक बन गया कि यह भगवान् शङ्कर को भी भक्षण कर गई। पुनः 'आस्तिक-वाद' की उत्पत्ति हुई, जिससे **'श्रुति-सीमन्त-सिन्दूरी-कृत-पादाब्ज-धूलिका'**—इस नाम से 'शुद्धा सरस्वती' का **पूजन** होने लगा। इसी कारण इसका नाम **'नीला'** है।

**'नील-सरस्वती'** और **'एक-जटा'** भगवती तारा के ये दो और नाम हैं। इनके मन्त्र, पूजा, न्यास, कवच में कुछ भेद भी है। इनके सम्बन्ध में **'अक्षोभ्य-संहिता'** प्रधान ग्रन्थ है। हमने नेपाल की लिखी प्रति देखी है। ग्रन्थ बहुत बड़ा नहीं है, परन्तु शिवोक्त होने से बड़े महत्त्व का है। भगवती तारा में षोढा-न्यास की प्रधानता है। महा-षोढा, गुह्य-षोढा और लघु-षोढा – केवल ये तीन भेद मेरे देखने में आए हैं। भगवती तारा में 'तिथि नित्या' नहीं होती। बलि-देवता को पहले बलि-प्रदान कर, तब प्रधान पूजन करना होता है, अन्यथा विघ्न होते हैं। 'अक्षोभ्य' अर्थात् जिसे काल-त्रय में कभी क्षोभ नहीं होता—ऐसे भैरव का पूजन तारा भगवती के मस्तक पर करना चाहिए।

भगवती तारा का पूजन-विधान वीर-द्रव्यों से ही होता है। वैरोचन, अमिताभ, पद्म-नाभ, शङ्ख-पाण्डुर दिग्-पत्रों में और लामका, मामका, पाण्डुरा, तारका –विदिशा के कमलों में पूजित होते हैं। चारों द्वारों पर पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक, वरान्तक—इन चारों गणों का पूजन होता है। भगवती तारा का यन्त्र विन्दु, षट्-कोण, अष्ट-दल, भू-पुरात्मक है। षडङ्ग देवता, इन्द्रादि दश दिगीश और वज्रादि दश आयुध जैसे प्रधान देवता के साथ अन्य देवताओं का पूजन किया जाता है। **'नील-सरस्वती'** में थोड़ा भेद है और **'विद्या-राज्ञी'** में आवरण के देवताओं के पूजन का बड़ा भारी विस्तार ग्रन्थ-कारों ने दिया है। इस विद्या में **'अष्ट-सरस्वती'** का साधन करना पड़ता है। **'अष्ट-सरस्वती'** इस प्रकार हैं—

**१ वागीश्वरी, २ चित्रेश्वरी, ३ तुलजा, ४ कीर्त्तीश्वरी, ५ अन्तरिक्ष-सरस्वती, ६ घट-सरस्वती, ७ नील-सरस्वती, ८ किणि-सरस्वती।**

'घट-सरस्वती' का साधन कवि दण्डी ने किया था, यह लोक-प्रसिद्ध है। 'चित्रेश्वरी' का साधन शालि-वाहन ने किया था, जिससे चित्र-मय सैन्य ने प्रत्यक्ष होकर विक्रमादित्य से युद्ध किया था। इसका साधन करने से मगणादि अष्ट-गण भी सिद्ध हो जाते हैं, कविता और चित्र दोनों में अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती थी।

भगवती तारा की परम्परा ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, वेद-व्यास, शुक्र, जैमिनि प्रभृति महर्षि-गणों से है। इस विद्या की कृपा से गायकों में, कवियों में, चित्र-कारों में, शास्त्रकारों में आज भी विचित्र प्रज्ञा का आविर्भाव हो जाता है। मथुरा-वासी स्वर्गीय नवनीत चौबे जी की कविता देखने योग्य है। आपमें गुरु-प्रसाद से एक ही रात्रि के साधन में कवित्व-कारिणी प्रज्ञा का प्रादुर्भाव हुआ था। आप साधारण वैदिक वृद्ध ब्राह्मण थे। भगवती तारा का 'यन्त्र' कण्ठ में बाँधने से प्रज्ञा-वर्धन होता है। ग्रहण में या सद्योत्पन्न शिशु की जिह्वा पर वीज लिखकर भोजनोत्तर और अर्ध-रात्रि में दो प्रकार के बलि-मन्त्रों से जो बलिदान करते हैं, उनकी वाणी में सरस्वती गङ्गा के प्रवाह-वत् निवास करती हैं।

जब से इस नाटे कदवाली, लम्बोदरी, नील-वर्णा भगवती तारा की उपासना भारत से गायब हुई है, तभी से ब्राह्मणों का उतना प्रभाव भी नहीं रह गया। ब्राह्मणों में ब्रह्म - तेज की उत्पत्ति इसी विद्या से थी। इस विद्या से किन-किन वस्तुओं का लाभ नहीं हो सकता ? इसकी कृपा से सभी पदार्थ कर-तल-गत हो जाते हैं। इसका साधन सर्व-मन्त्रों से उत्तमोत्तम, वाञ्छा-पूर्त्ति-कर और वर्त्तमान काल के उपयुक्त है। इस विद्या के साधन में धर्माडम्बरों को आवश्यकता नहीं है। सिद्धि के बाद, निशोपासना प्रभृति साधन आमृत्यु-पर्यन्त छोड़ देना होता है। नहीं तो देवता का सद्यः आविर्भाव हो जाता है। मुख्य-तया इसे दो समय बलिदान देना पड़ता है। यह विद्या ऐन्द्रजालिकों की भी प्राण है।

इस विद्या की साधना विधान-पूर्वक करनी चाहिए। जो देवाविर्भाव के लक्षणों को पहिचान कर साधना करता है, वही सर्वैश्वर्यों का भागी होता है। यदि वह असावधानी या कायरता कर बैठता है, तो फिर महा-दरिद्र होकर क्लेश के साथ जीता है, जिसका उद्धार मातृका के साधन तथा अभिषिञ्चन से होता है। अथवा 'गुरु-कृपा' से होता है।

भगवती तारा के दो कवच, आठ स्तोत्र हैं और चार सहस्र-नाम, जिनमें 'क्रोधोपशमन सहस्र-नाम' को छोड़कर तीन देखने में आए हैं। साधना करनेवालों को 'सहस्र-नाम' का पाठ प्रातः-काल नित्य कर लेना चाहिए अथवा जैसी गुरु की आज्ञा हो।

भगवती तारा के हाथ में 'कर्त्री' अर्थात् 'कैंची' का धारण साधक के कपाल की दुष्ट-लिपि को काटकर, जन्मान्तरीय प्रायश्चित्त-समूह के सूत्र-छेदन के लिए, 'खड्ग' भय को हटाने के लिए और शत्रु-समूह को निर्मूल करने के लिए है। मधु-पूरित कपाल खेचरी मुद्रा का बोधक है। भगवती तारा 'नील-वर्णा' हैं, कमल भी नील है, साधक का हृत्-कमल अपने रङ्ग में रँग कर सौरभान्वित करती हैं। 'नील वर्णा' सूर्य की रश्मियों की चरम सीमा का रङ्ग है। इस नील रङ्ग का फल **"आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानः सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च वै असावादित्यो ब्रह्म"** उक्ति से प्रकट है।

भगवती तारा की साधना में, स्वप्न-वत् तुरीयावस्था में, सिद्धि-संसूचक शुभ लक्षण प्रायः दिखाई देते हैं, जिनसे जगने पर आत्मा को संतोष मालूम होता है और आनन्द-वृद्धि, हर्ष, उत्साह एवं

प्रिय वाक्यों का श्रवण होता है। अशुभ लक्षणों में, इससे विपरीत कार्य होते हैं। स्वप्नावस्था में बन्दरों का दर्शन तथा उत्पात करना यदि देखे, तो 'शान्ति-कर्म' करना चाहिए। 'मन्त्र' के अन्त में **'शान्ति कुरु कुरु नमः'** यह पल्लव लगाना चाहिए। श्वेत चन्दन से 'वारुण यन्त्र' लिखकर, मध्य में देवता की स्थापना करनी चाहिए। शिष्टागार-गत अग्नि लेकर, उसमें आम्र-काष्ठ की समिधा, खीर, बिल्व-मिश्रित या कमल-गट्टा-युक्त सद्धवि से होम कर, 'शान्ति-स्तोत्र' के पाठ सहित पूजन करना चाहिए। यदि लगन लगे हुए चित्त से साधक साधना करता है और गुरु जिसने साधना की हो—दोनों सिद्धि करने को तत्पर हों, तो भगवती तारा अवश्यमेव सिद्धि प्रदान करेंगी।

भगवती तारा, काली या सुन्दरी में भेद-भाव हृदय से निकाल देना चाहिए। ये सब वही 'एक' हैं, जिसे 'श्रुति' कहती है—**'एकोऽहं बहु स्याम्'**। 'एक' के नाम में, स्थान-क्रिया आदि में भेद क्यों है? इस शंका की निवृत्ति के लिए यही समझना चाहिए कि, मनुष्यों में जिस प्रकार 'अधिकार - भेद' के कारण व्यक्ति-विशेष अपने-अपने अधिकार-प्रयुक्त धर्मों का ही पालन कर सकता है, उसी प्रकार प्रकृति के अवतारों में भी भगवान् शङ्कर ने भेद डाल दिया है, जिससे प्रयोजनीय उपयुक्त धर्मों की प्राप्ति शीघ्रता से हो सके। मनुष्य-हृदय एक दूसरे से भिन्न हैं, देवता में वह भेद नहीं है। साधक की मनोवृत्ति से - पदार्थ, क्रिया तथा काल-भेद से सभी कार्य सम्पादित हो जाते हैं। प्रधान धर्म एक होता है। जैसे भगवती तारा 'अज्ञान-निर्मूलक' प्रधान देवता हैं। इनसे 'उपयुक्त प्रज्ञा' प्राप्त करना ही मुख्य है। 'प्रज्ञा' के अधीन राष्ट्र का सञ्चालन करना, ज्ञानोदय प्राप्त करके—विश्व में विश्व-मय हो जाना और अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति करना है।

साधक के लिए मन्त्र तभी तक कीलित होते हैं, जब तक उसमें संसारी वासनाओं को प्राप्त करने की इच्छा होती है। 'मोक्ष'-प्राप्ति के लिए सभी महा-विद्याएँ समान हैं। शक्ति-प्राप्ति में इन्हें भिन्न-भिन्न समझना चाहिए। वैसे वस्तुतः सभी एक हैं।

भगवती तारा का आविर्भाव बाहर से नहीं होता। ये तो घट—भीतर की स्वात्म 'चैतन्य-शक्ति' हैं। मनुष्यों के दोषों को हटाने की जिसे इच्छा होगी, वही भगवती तारा की साधना में मन रमाएगा। जिसे वीरों की श्रेणी में स्वर्णाक्षरों में अपना नाम सदा के लिए लिखाना होगा, वही अपनी आत्मा को भगवती तारा और शरीर को तरणी निर्मित करने का साहस प्राप्त करेगा। वीर पुरुष दुष्टों का एवं दुष्ट प्रवृत्तियों का दमन कर श्मशान निर्मित करता है और शिष्टों एवं शिष्ट प्रवृत्तियों के सन्मार्ग का पालन करता है। जिसे उच्च स्थान प्राप्त करने की श्लाघा होती है, वही मुण्ड - साधन, शव - साधन, श्मशान-साधन जैसी उग्र साधनाएँ कर देशोद्धारक तथा धर्मोद्धारक बन विश्व में यशस्वी होता है।

# श्रीतारा-माहात्म्य

पण्डित रघुवीर मिश्र, 'विशारद'

**'नहि तव आदि-मध्य अवसाना, अमित प्रभाव वेदु नहि जाना।'**

माँ ! जब चारों वेद ही तुम्हारे अमित प्रभाव को न जान सके, तो फिर मुझे जैसा मन्द-बुद्धि तुम्हारी अपार महिमा का वर्णन करने का दुस्साहस करे, तो यह पिपीलिका के समुद्र-संतरण की तैयारी के समान ही होगा, किन्तु प्रेरिका भी तो तुम्हीं हो। अतः **'त्वदीय वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये'** की बात है। तुम्हारे गुण अनन्त हैं, महिमा अपार है, लीलाएँ नित्य नूतन रहस्य - मयी हैं, इसीलिए अनिर्वचनीय हैं।

माँ तारिणी तारे ! यदि विश्व की सारी 'गिरि-श्रेणियाँ' मसि में परिवर्तित कर दी जाएँ, सभी 'समुद्र' उनके घोलने के लिए 'मसि-पात्र' में परिवर्तित कर दिए जाएँ, इतनी बड़ी योजना से बनाई हुई मसि के लिए सारी 'पृथ्वी' 'कागज' के रूप में ले ली जाए, 'कल्प-द्रुम' को कलम रूप में काम में लाया जाय, और माँ वीणा-पाणि शारदा तुम्हारे गुणों को लेख-बद्ध करें, तो भी कल्प - कल्पान्तर तक लिखते रहने पर भी तुम्हारी गुणावली का अन्त पाना कठिन ही नहीं, किन्तु महा-कठिन है।

तो फिर यह चेष्टा क्यों, यह प्रयास किसलिए ? तुम तो माँ हो ! तुम्हें अपने बच्चों की तोतली बोली ही खूब पसन्द आती है न ? इसलिए मुझ पशु पर क्रोधित न होना। तुम्हारी भक्ति ही मुझे मुखरित कर रही है, तुम्हारी स्मित-रेखा बावला बना रही है, माँ !

माँ ! अखिल सृष्टि की जननी तो तुम्हीं हो। तुम्हारे ही इशारे से तो यह सारी सृष्टि परिचालित हो रही है। तुम्हारे ही भृकुटि-विलास से तो क्रम-क्रम से उत्पत्ति, स्थिति और संहार का पटाक्षेप होता है। फिर इसके सूत्र-धार दूसरे क्यों कहलाते हैं ? इसमें भी तुम्हारी परम कृपा ही कारण है।

तुम्हारे ही पदारविन्दों के पराग के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पत्ति, पालन और संहार के करनेवाले हैं। फिर तुमसे विमुख रहनेवाले अभागे ही तो हैं।

माँ ! तुम्हारे चरणारविन्द के शरण्य होने से ही नारायण रमा-पति हैं, अभव्य अमङ्गल वेश-धारी भूत-नाथ शिव कहलाते हैं और पुत्री के पीछे दौड़नेवाले ब्रह्मा वेद-धाता के नाम से पूजित हैं। फिर ऐसे महिमान्वित चरणों से विमुख होनेवाले कल्प - कल्पान्तर तक क्यों न इस भव - सागर में गोता खाते रहें !

माँ ! फिर भी यदि ये विमुख होते हैं, तो दयनीय हैं, कारण ये अल्पज्ञ हैं और तेरी लीला बड़ी विचित्र और बहुत निगूढ़ है। अरे, इनकी बिसात ही क्या, जब कि तेरे वे अहर्निश शरण्य रहनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जब-तब खूब चकरा जाते हैं, लेकिन भोले बाबा जल्दी तुम्हारे मोह - चक्र में नहीं फँसते।

माँ ! सचमुच तुम्हारा यह तिरङ्गा फाँस क्या ही गजब का है ! बिना फँसाए किसी को छोड़ता कहाँ है ! फँसाकर तुम्हारे पास ले जाने के बदले और तुमसे दूर-बहुत दूर ले जाकर भटकने के लिए छोड़ देता है।

हाँ, इसलिए तो उस दिन जब माँ, अपने रूप में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन कर, 'आद्या' से 'द्वितीया' बन गई थी, तो हमारे गरुड़-गामी नारायण बिल्कुल चकरा ही तो गए। तुमको पहचान ही न सके। केवल स्वयं ही नहीं किन्तु सारे सुर-समाज के साथ पितामह को भी अपना साथी बना लिया, लेकिन माँ, भोला बाबा बेदाग निकल गए ! तुम्हारी माया से बच गए। यद्यपि ये दिखाई पड़ते हैं भोले - भाले, किन्तु भीतर से हैं सबसे ज्यादा होशियार। इसीलिए सबके गुरु ही बन जाते हैं और अवसर भी खूब सँभालते हैं। माँ, जरा तुम भी इन पर विशेष कृपा रखती हो।

हाँ, तो उस दिन तुम मेरु के पश्चिमाञ्चल में चोल-ह्रद के पास अपना रूप बदल रही थीं। माँ, तुमने कुछ ही देर में अपने को बिल्कुल परिवर्तित कर लिया। 'श्यामा' के बदले अब तो तुम 'नीला' बन गई थीं। 'मुक्त-केशी' की 'मुक्त-छटा' अब कहाँ थी ? अब तो तुम 'एक-जटा' बन गई थीं। 'दिगम्बरा' से अब 'व्याघ्र-चर्म-परीधाना' हो रही थीं और 'ललज्जिह्वा' के स्थान पर इस समय 'स्मित - रेखा' विराज रही थी तुम्हारे मुख-मण्डल पर। इस रूप में तुरन्त तुमको पहचान लेना टेढ़ी खीर थी, लेकिन भोले बाबा वहीं छिपे थे 'अक्षोभ्य' बनकर। इसलिए आप ही ने माँ को सबसे पहले पहचाना।

भोले बाबा ने तो नारायण को भी बचाने का खूब प्रयास किया, किन्तु होना कुछ और था। उनकी चेतावनी व्यर्थ गई। यही व्यर्थ यथार्थ में परिणत हुआ।

हाँ, तो उस समय नारायण गरुड़ पर चढ़कर 'नैऋत दिशा' से 'ईशान दिशा' को जा रहे थे। रास्ते में 'नीलाञ्चल' पड़ता था। आपके मार्ग में ही अम्बा का वह कमनीय लीला-स्थान पड़ता था। भोले बाबा न आपको बगल से जाने के लिए इशारा किया, लेकिन आप ठहरे नारायण, चराचर के पालक ! अतः इतने बड़े अधिकारी होकर, आप क्यों मुड़ते ?

आपने शङ्कर के उपदेश को टाल दिया, लेकिन यह आपकी बड़ी भूल थी। फल वही हुआ, जो होना चाहिए था। आपकी अप्रतिहत गति कुण्ठित हो गई। तो भी चेतना नहीं हुई। आप क्रोधित हो उठे और नीचे उतरकर 'अष्ट-भुज' होकर लगे 'नीलाञ्चल' को उखाड़ने। बहुत परिश्रम किया, किन्तु उससे कुछ हुआ नहीं, लेकिन माँ, तुम उनकी अज्ञता पर क्रुद्ध हो उठीं। तुमने 'सिद्ध - सूत्र' से वेष्टित कर 'लवण-समुद्र' में नारायण को डाल दिया। नारायण की यह दशा देखकर ब्रह्मा दौड़े आए और उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा—

लेकिन बेचारे ब्रह्मा की भी वही हालत हुई। विष्णु को पकड़कर बाहर निकालने के प्रयत्न में स्वयं भी झोंके में अन्दर चले गए ! इसी प्रकार अन्य देव-गण आते गए और नारायण के सह-गामी होते गए। बड़ा अनर्थ हुआ, सम्पूर्ण देव-लोक शून्य हो गया ! आखिर देव-गुरु इसके समाधान में निकले—

कैलाश में शङ्कर को देखकर बेचारे देव-गुरु की जान में जान आई, बेचारे शङ्कर के चरणों की शरण हुए। देव-पुरियों की शून्यता के विषय में निवेदन किया। भगवान् शङ्कर ने ध्यानस्थ हो इस शून्यता का कारण बृहस्पति से कह सुनाया। अब तो देव-गुरु बहुत व्याकुल हुए और विष्णु आदि देवताओं के उद्धार के लिए प्रार्थना करने लगे।

भगवान् आशुतोष, बृहस्पति की प्रार्थना से प्रसन्न होकर, देव-गुरु को साथ लेकर 'लवण-समुद्र' के पास पहुँचे। वहाँ जाकर देखा कि स्वयं नारायण, गरुड़ के साथ डूब-उतरा रहे हैं, अन्य देवताओं की तो बात ही क्या ! शङ्कर ने देवताओं की संख्या-अनुसार रूप ग्रहण कर, 'कामाख्या-कवच' को धारण

कर, उनका उद्धार किया। सभी शङ्कर के चरणों पर गिरे। शङ्कर ने सबसे माँ तारिणी से अपना-अपना अपराध क्षमा कराने के लिए कहा।

सभी देव-गण शङ्कर को सङ्ग लेकर, माँ तारा के पास पहुँचे। भगवान् विष्णु भी लज्जित होकर, माँ के सामने खड़े हुए। नारायण के हृदय से गर्व जा चुका था, इसलिए निर्मल हृदय हो, लगे माँ की स्तुति करने ! माँ प्रसन्न हो उठीं और वर माँगने के लिए कहने लगीं। भगवान् विष्णु ने क्या वर माँगा, जरा उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

**"तव क्षेत्रे महा-पुण्ये, अष्ट-दिक्षु स-शक्तिकः। तिष्ठाम्यहर्निशं मातस्तवाज्ञा-वशगः सदा ।।"** (ना० पं०)

माँ, तुमने सभी देवताओं की रक्षा की तथा सभी का इस विपत्ति से उद्धार किया। इसलिए माँ, तुम्हारी इस द्वितीया मूर्ति को सभी देव-गण 'तारा' कहने लगे। माँ, तुम्हारा प्रभाव ही ऐसा कुछ है। तुम्हीं इस सृष्टि की केन्द्र-विन्दु हो। सारे ऐश्वर्य, तुम्हारे चरणों पर लोटते हैं। इसीलिए भगवान् शङ्कर ने स्वीकार किया है कि सर्व देवों में जो विभूति है, वह तुम्हारी ही है।

माँ तारे ! तुम्हारी महत्ता ही सर्व-व्यापक है। जो लोग अन्य विग्रह का ध्यान कर तथा अन्य नामों का स्मरण कर, मोक्ष की कामना करते हैं, वहाँ भी तुम्हारा ही नाम है और इसीलिए उनकी कामना पूर्ण होती है—

जो लोग तुलसी की माला धारण कर हमेशा 'सीता-राम', 'सीता-राम' कहते रहते हैं, कभी भी 'तारा-तारा' नहीं कहते हैं और तुम्हारा नाम लेने से विमुख रहते हैं, उनके उद्धार के लिए भी माँ तू 'सीता-राम' में प्रविष्ट हो गई है। अर्थात् 'सीता-राम' पद में 'सी' और 'म' के उच्चारण को हटा देने से 'तारा' का ही उच्चारण होता है।

माँ, तुम्हारा रूप अचिन्त्य है, नाम अनन्त हैं, लीला विचित्र है। बड़े - बड़े ज्ञानी भी तुम्हारे रहस्य का पार नहीं पा सकते। फिर हमारे ऐसे मन्द-बुद्धियों का क्या ठिकाना ! तुम न पुरुष हो, न स्त्री। तुम सगुणा हो—या निर्गुणा, यह निर्णय करना कठिन है। माँ, मैं तेरा शरणापन्न हूँ, तुम्हारी दया का भिखारी हूँ। अपनी निर्मला भक्ति देकर इस दीन का उद्धार करो।

## हे माता तारा !

हे जननि ! हे नील-सरस्वति ! जो साधक आपको प्रणाम करते हैं, उन्हें आप सौभाग्य-सम्पद् देती हो ! शव-रूपी हर के हृदय के ऊपर प्रत्यलीढ़ पदों के द्वारा हँसती हुई आप खड़ी हो। प्रफुल्ल इन्दीवर की तरह, आपकी तीन आँखें हैं, चार हाथों में कर्त्रिका, नर-कपाल, उत्पल और खड्ग धारण किए हुए हो; आप सबकी रक्षा-कर्त्री ईश्वरी हो, आपका ही मैं आश्रय लेता हूँ।

# श्री तारा देवी

श्री प्रभातकुमार बनर्जी

श्री तारा देवी 'प्रत्यालीढ-पदा', भीषण आकृतिवाली, खर्वा और लम्बे उदर की हैं। 'प्रत्यालीढ-पदा' से ऐसा समझा जाता है कि आपका बाँयाँ पैर सामने की तरफ बढ़ा हुआ है और दाहिना पैर पीछे की तरफ संकुचित भाव से रक्खा गया है। आपके गले में 'नर-मुण्डों' की माला पड़ी हुई है और कमर से 'व्याघ्र-छाल' लटक रही है। आप 'नव-युवती' रूपा हैं। पञ्च मुद्राओं से अर्थात् सफेद हाड़ से बने हुए 'पट्टिका-चतुष्टय' और 'नर-कपाल' द्वारा विभूषिता हैं। आप चार हाथवाली, लोल - जिह्वा - धारिणी, महा-भयङ्कर-रूपा और वर-प्रदान-शीला हैं। दाहिने दोनों हाथों में 'खड्ग' और 'कर्त्तरिका' हैं और बाँईं तरफ के दोनों हाथों में, 'नर-मुण्ड' और 'कमल' हैं।

श्री तारा-देवी के मस्तक पर पिङ्गल-वर्ण की एक 'जटा' है; कपाल पर नाग-रूप-धारी त्रि-मूर्ति 'अक्षोभ्य ऋषि' हैं। नवोदित चन्द्र-मण्डल-सदृश आपकी देह-प्रभा है और तीन आँखें आपके भूषण-स्वरूप हैं। श्री देवी जी प्रज्वलित चिता के भीतर विराजमाना हैं, आपके दाँतों की पंक्तियाँ अति भयङ्कर हैं। श्री देवीजी अपने ही भावों में मस्त होकर 'हास्य-वदना' रहती हैं। आप कई तरह के अलङ्कारों से विभूषिता हैं और विश्व-व्यापक जल के भीतर 'श्वेत पद्म' के ऊपर विराजती हैं।

श्री तारा देवी की 'मन्त्र-सिद्धि' के सम्बन्ध में 'तारार्णव' में एक कथा प्रचलित है, जिसके अनुसार श्रीवशिष्ठ-ऋषि, श्री तारा के सिद्ध मन्त्र का बहुत अधिक काल तक जप करने पर भी असफल रहे, इसलिए उन्हें चिढ़ हुई। उन्होंने क्रोध के कारण असफलता के लिए अभिशाप दिया कि 'श्रीतारा-मन्त्र' फल-प्रद न होगा।

श्री तारा देवी को माया से वशिष्ठ ऋषि ने स्वतः मन्त्र का शापोद्धार किया। उन्होंने **'ह्रीं त्रीं हूं फट्'**—इस मन्त्र से श्रीतारा देवी की आराधना की थी। शापोद्धार के समय उन्होंने **'त्रीं'** बीज के साथ **'स'** कार जोड़ दिया और **'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'**—इस मन्त्र से उपासना की विधि निर्दिष्ट की। तब से श्री तारा देवी ने 'वधू' की तरह यश पाया। यह महा - विद्या सर्व - विद्याओं की फल-दात्री, जयार्थियों की जय-कारिणी, विष-पीड़ितों की विष-क्षय-करी और मृत्यु-हारिणी है। इस मन्त्र के ज्ञान मात्र से ही मन्त्र-विद् जयी हो सकता है।

'मत्स्य-सूक्त' में लिखा है कि तारा-देवी के 'सिद्ध मन्त्र' के जप से साधक 'जीवन्मुक्त' हो जाता है। उसे विशुद्ध 'कवित्व-शक्ति' प्राप्त होती है और वह सब शास्त्रों में पाण्डित्य प्राप्त करता है। वह कुबेर-धनाधीश सरीखा 'धन-पति' बन जाता है और राज-दरबारों में, सभाओं में, विवादों में, वाणिज्य आदि सब कामों में विजयी और सुर-गुरु वृहस्पति के सदृश मनीषी हो जाता है।

तारा देवी बहुत ही आसानी के साथ 'वाक्-शक्ति' देती हैं, इसीलिए उन्हें सरस्वती देवी भी कहते हैं। आपका रङ्ग नीला होने से वे **'नील-सरस्वती'** के नाम से पुकारी जाती हैं। आप साधक का उद्धार कर देती हैं। इससे इन्हें 'सुख-मोक्ष-दात्री' कहा जाता है। बहुत ही उग्र आपदाओं से उद्धार करती हैं, इसलिए आप **'उग्र-तारा'** के नाम से भी सम्बोधित होती हैं।

'रुद्र-यामल' एवं 'ब्रह्म-यामल' के अनुसार महर्षि वशिष्ठ द्वारा—

# महा-विद्या तारा की साधना

### श्री रास-मोहन चक्रवर्ती

'रुद्र-यामल' के सत्रहवें पटल में और 'ब्रह्म-यामल' के पहले और दूसरे पटल में महर्षि वशिष्ठ-द्वारा की गई तारा महा-विद्या की साधना का विवरण दिया है। इससे मालूम होता है कि प्राचीन काल में ब्रह्मा के मानस-पुत्र वशिष्ठ ने पिता से तारा-मन्त्र की दीक्षा लेकर सिद्धि-लाभ की आकांक्षा से 'नीलाचल' ('आसाम' के अन्तर्गत, गौहाटी नगर के पास एक पहाड़) पर 'कामाख्या योनि-मण्डल' (वर्त्तमान कामाख्या-तीर्थ) में कठोर तपस्या की। दश-सहस्र-वर्षों तक आराधना करने पर भी, उन्हें संसार-तारिणी तारा का अनुग्रह प्राप्त नहीं हुआ। इस पर वशिष्ठ कुपित होकर पिता के समीप गए और उनसे अन्य मन्त्र ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की। साथ ही वशिष्ठ ने अपनी कठिन तपस्या का वृत्तान्त इस प्रकार कह सुनाया—

"हे पिता, आपने यह दुराराध्या विद्या मुझे क्यों प्रदान की? हविष्यान्न का भोजन करते हुए मैंने नीलाचल पर एक सहस्र वर्षों तक आराधना की, किन्तु तारिणी की मुझ पर कृपा नहीं हुई। फिर मैंने प्रतिदिन चुल्लू भर जल पीते हुए, एक सहस्र वर्षों तक देवी की साधना की, परन्तु उसकी कृपा नहीं मिली। इसके बाद निराहार रहते हुए, एक पैर पर सीधे खड़े रहकर, तारा-मन्त्र का जप करते-करते आठ सहस्र वर्ष और बिताए, परन्तु फिर भी उस अकरुणा की करुणा सञ्चारित नहीं हुई।

हे प्रभो! इस प्रकार दश सहस्र वर्षों तक 'कामाख्या योनि-पीठ' में परमेश्वरी तारा की समाराधना करने पर भी आज तक उसका अनुग्रह प्राप्त नहीं हुआ। अतएव बड़े दुःख के साथ, इस दुःसाध्य विद्या को छोड़ता हूँ।"

तब लोक-पितामह ब्रह्मा, वशिष्ठ को सांत्वना देते हुए, भगवती तारा के माहात्म्य का वर्णन करने लगे—

"तारा-विद्या के समान तीन लोकों में और कोई विद्या नहीं है। इनको छोड़कर तुम और दूसरी किस विद्या को ग्रहण करोगे?

इन्हीं तारा-देवी के अनुग्रह से, मैं चौदह भुवनों की रचना और चार वेदों की व्याख्या अनायास करता हूँ। इन्हीं भुवन-तारिणी विद्या की समाराधना करके, तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर विष्णु जगत् का पालन करते हैं। प्रलय-काल में, तारा ही की समाराधना करके महा-देव रुद्र-मूर्ति धारण कर, अखिल जगत् का संहार करते हैं।

वह नीला देवी (तारा) 'परमा शक्ति' है, वह समस्त सङ्कटों से जीव का परित्राण करती है, वह करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रकाशवान और करोड़ों चन्द्रों के समान सु-शीतल है। वह महाकाल-पत्नी तारा, करोड़ों विद्युत्-लतिकाओं के समान ज्योतिर्मयी है।

तारा भुवनों का त्राण करनेवाली और ब्रह्म-ज्ञान-मयी है। अनुद्विग्न--शान्त चित्त से उसके श्री-चरणों की आराधना करो।

हे वत्स! नीलाचल पर पुनः जाकर 'कामाख्या योनि-मण्डल' में तारा-महा-विद्या की साधना में प्रवृत्त हो। शीघ्र ही तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं।"

ब्रह्मा के निर्देशानुसार, वशिष्ठ नीलाञ्चल पर जाकर, शौचाचार-परायण होकर फिर तपस्या में लग गए, किन्तु एक-सहस्र वर्षों तक, परम मन्त्र का जप और इष्ट-देवी का ध्यान करने पर भी, उन्हें महा-देवी के पाद-पद्मों के दर्शन सुलभ नहीं हुए। इस पर महा-मुनि वशिष्ठ क्रोध से प्रज्वलित होकर तारा-देवी को शाप देने को उद्यत हुए। सहसा समौल वन-कानना वसुन्धरा कम्पित हो उठी, देव-गणों में महा-हाहा-कार की ध्वनि मच गई। वशिष्ठ ने दो बार आचमन करके देवी को अभिशाप दिया कि वह 'फलदा' नहीं होगी।

तब अकस्मात् कुलेश्वरी महा-विद्या तारा वशिष्ठ के सम्मुख आविर्भूत होकर उनसे बोलीं—

"मेरा तत्त्व न जानते हुए, विरुद्धाचार ग्रहण कर तुमने इतने समय व्यर्थ ही श्रम किया।

तुम मेरी पूजा जानते नहीं हो, न तुम मेरे कुलागम की चिन्ता जानते हो। योगाभ्यास - द्वारा मेरे पाद-पद्मों का दर्शन कैसे करोगे ?

'चीनाचार' के बिना मैं कदापि प्रसन्न नहीं होती। मेरी आराधना केवल बुद्ध - रूपी विष्णु ही जानते हैं और कोई दूसरा ठीक-ठीक उसे नहीं जानता। हे सुव्रत, इसी के उपदिष्ट आचार से मेरी आराधना करो, तब मैं तुम पर प्रसन्न होऊँगी, इसमें सन्देह नहीं।

तुम अथर्व-वेदानुगामी बौद्ध-देश 'महा-चीन' को जाओ। वहाँ महा-भाव-मय मेरे पाद-पद्मों का दर्शन करते हुए, तुम मेरे कुलज्ञ और महा-सिद्ध हो जाओगे।"

वशिष्ठ को इस प्रकार निर्देश देकर भगवती तारा अन्तर्हित हो गईं।

अनन्तर महा-मुनि वशिष्ठ तारा महा-विद्या की साधना की आचार - पद्धति जानने के लिए, 'महा-चीन' (तिब्बत) की यात्रा पर चल पड़े। उन्होंने हिमालय के पार्श्व में बुद्ध-देव (शाक्य मुनि गौतम बुद्ध 'कलि-युग' में आविर्भूत हुए थे। पूर्व-काल में दीपशर, कौतिल्य, मङ्गल इत्यादि नाम-धारी अन्य ३२४ बुद्ध प्रादुर्भूत हुए थे। 'बुद्ध-वंश' नामक पाली-ग्रन्थ में इनका विवरण दिया है) के दर्शन किए।

वहाँ वशिष्ठ ने देखा—रूप-यौवन-सम्पन्ना, मद्य-पान-रता, शृङ्गार - रसाविष्टा, भय - लज्जा-विहीना, देवी-ध्यान-परायणा सहस्र रमणियों-द्वारा परिवेष्टित होकर, बुद्ध अवस्थित हैं। वे स्वयं मदिरा-पान से विह्वल होकर, मन्द-मन्द दृष्टि का निक्षेप कर रहे हैं। बुद्ध के सङ्गी सभी सिद्ध-गण दिगम्बर हैं। वे सभी वेदाचार-बहिर्भूत, मद्य तथा स्त्री-सेवन में रत हैं।

वशिष्ठ दूर से इस दृश्य को देखकर अतीव विस्मित हुए और संसार-तारिणी तारा का स्मरण करके विचार करने लगे—'बुद्ध-रूपी विष्णु यह क्या कार्य कर रहे हैं! वेद-वाद - विरुद्ध इस आचार का अनुमोदन मैं नहीं करता।' वशिष्ठ जब इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, हठात् आकाश-वाणी हुई—

"हे मुने! 'तारिणी' की साधना का यही आचार प्रशस्त है। इससे विरुद्ध भाव की साधना से तारा-देवी प्रसन्न नहीं होतीं। हे सुव्रत! यदि तुम शीघ्र उनकी प्रसन्नता चाहते हो, तो 'चीनाचार-क्रम' से उनकी अर्चना करो।"

इस आकाश-वाणी को सुनकर रोमाञ्चित-कलेवर हो वशिष्ठ बुद्ध-रूपी विष्णु के समीप गए और उनको शरण ग्रहण कर उनसे निवेदन किया—

"हे बुद्ध-रूप-धारी अव्यय महादेव! सदा व्याकुल-चित्त, अति- दीन इस ब्रह्मा - पुत्र वशिष्ठ की रक्षा करो। महा-देवी की साधना के लिए मैं यहाँ आया हूँ। वेद-मार्ग-परायण मैं सिद्धि का मार्ग नहीं

जानता । आपके आचार को देखकर मेरे हृदय में प्रश्न उठते हैं । आपके समीप मद्य-पान, मांस-भोजन और स्त्री-सेवनादि वेद-वहिष्कृत कार्य सर्वदा अनुष्ठित होते हैं, यह किस प्रकार ? वेदाचार के बिना सिद्धि-लाभ कैसे होगा ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"वशिष्ठ, मैं तुमको उत्तम 'कौल-मार्ग' का उपदेश करता हूँ । तुम प्रसन्न-मन से सुनो । इसके विज्ञान मात्र से साधक तत्-क्षण ही रुद्र-रूप हो जाता है ।

हे मुने, तारिणी की साधना का यह आचार सर्वदा प्रकाशनीय नहीं है । तुम्हारी भक्ति के वश में होकर मैं इसका प्रकाश करता हूँ ।"

तव बुद्ध ने वशिष्ठ को चीनाचार-साधना के पञ्च-मकार-तत्त्व अर्थात् मांस, मद्य, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का उपदेश प्रदान किया । बुद्ध वशिष्ठ को चीनाचार का उपदेश करते हुए बोले—

"उच्च स्तर की इस साधना के साधक को, निम्न स्तर के साधक-गण की तरह विधि-निषेध के अधीन होकर चलना नहीं होता । सब प्रकार के विकार-हेतुओं के बीच में रहते हुए भी साधक को निर्विकार रहना होता है, यही 'चीनाचार' का गुह्य रहस्य है ।

इस स्तर की साधना में साधक के बाह्य स्नान, शौचाचार, जप और तर्पणादि अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं रहती । ये सभी व्यापार 'मानसिक भाव' से किए जाते हैं ।

इस आचार की साधना में साधक के लिए सभी काल शुभ हैं, 'अशुभ काल' नाम का कुछ नहीं है । दिवा, रात्रि, संध्या या महा-निशा की आराधना में कोई अन्तर नहीं है । इसमें शुद्धि और अशुद्धि की अपेक्षा नहीं है, मेध्य-अमेध्य का विचार नहीं है । बिना स्नान किए हुए अथवा भोजन कर चुकने की अवस्था में भी देवी की पूजा सर्वदा की जाती है ।

इस स्तर की साधना में साधक किसी से और विशेषतः नारी से द्वेष न करे और विमुक्त-भाव में नारी की पूजा करे ।"

'चीनाचार' के माहात्म्य-वर्णन के प्रसङ्ग में बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा—"इस आचार के अनुष्ठान मात्र से साधक को भव-सागर में और डूबना नहीं होता । इससे समस्त शोक शान्त हो जाते हैं । यह आनन्द आदि विभूतियाँ प्रदान करता है । यह तत्त्व-ज्ञान-मय और साक्षात् विमुक्ति-फल-दायक है ।"

बुद्ध-रूपी गुरु से उपदेश सुनकर, वशिष्ठ 'कुल-मण्डल' में जाकर मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—इन पञ्च-तत्त्वों से बार-बार साधना करके 'पूर्ण-योगी' हो गए ।

ऐसा कहा गया है कि महा-मुनि वशिष्ठ ने बुद्ध-देव से दीक्षा ग्रहण कर, भगवती तारा के आदेश-क्रम से "तारापुर" नामक स्थान में आकर सिद्धि-लाभ किया । पश्चिमो बङ्गाल के वीर-भूम जिले में 'तारापुर' गाँव है । इस स्थान में उत्तर-वाहिनी द्वारका नदी के किनारे 'तारा-पीठ' विख्यात है । यह महा-पीठ नहीं है, वशिष्ठ का सिद्ध-स्थान होने से 'सिद्ध-पीठ' है । 'तारा-पीठ' की अधिष्ठातृ देवी वशिष्ठ की आराधिता 'तारा' और भैरव 'चन्द्रचूड' हैं । 'तारापुर' के सम्बन्ध में 'योगिनी-तन्त्र' में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—"वक्रनाथ के ईशान-कोण में और वैद्यनाथ की पूर्व-दिशा में 'तारापुर' नामक विख्यात नगर है । उस स्थान में शिला-मयी तारा-देवी वर्त्तमान हैं । यत्न-पूर्वक उस तीर्थ में जाए । इस स्थान में तीन लाख मन्त्र-जप करने से तारा देवी सर्व-सिद्धियाँ प्रदान करती हैं ।"

◆◆

'महा-विद्या' तारा की साधना का महत्त्व-पूर्ण अङ्ग—

# चीनाचार

पण्डित शिवकुमार शर्मा

महा-माया तारा का नाम सुनते ही वीर-भक्त-शिरोमणि 'वामा-खेपा' का स्मरण हो आता है। 'चण्डी' के पाठक आपकी जीवनी से भली-भाँति परिचित होंगे, तथापि आप जैसे महान् पुरुष का गुण-गान किए बिना रहा नहीं जाता। आप 'वीर-भूमि', 'तारा-पीठ' के निकट भाटला ग्राम के निवासी थे। आपने घर बाल्य-काल ही में छोड़ दिया था और तारा मां के मन्दिर में—**"तदङ्ग - मङ्गलं साधयामि"** कहते हुए पड़े रहते थे।

जिस समय आपकी माता जी का देहान्त हुआ, उस समय आपको खबर न देकर, गाँववाले उनका दाह-संस्कार करने के लिए दामोदर नदी के तट पर ले आए।

जब आपको मालूम हुआ, तो आपने कहा—'नहीं, मां का दाह-संस्कार इस पार मां की चरण-पादुका के निकट ही होगा।'

लोगों ने आपको समझाया कि—'इस समय नदी बढ़ी हुई है. नाव आती-जाती नहीं, कैसे सम्भव हो सकता है?'

आपने कहा—'नाव नहीं आती-जाती, तो क्या हुआ, मैं जाऊँगा।'

लोग 'हाँ-हाँ' ही करते रह गए और आपने छलाङ्ग मार ही दी। एक मिनट में उस पार जाकर आपने किसी से कुछ कहा-न-सुना, सीधे अर्थी को कन्धे पर उठा लिया और नदी में गायब हो गए। अर्थी को नदी पार लाकर, भैरव-भैरवी एवं शिवा-गणों के कलरव में विशाल मालाओं से विभूषित, सैकड़ों मुण्डासन, समाधि और वसिष्ठासनादिकों से शोभाय-मान महा-श्मशान में चरण-पादुका पर मां का दाह-संस्कार सम्पन्न किया।

एकादशाहवाले दिन अपने कुटुम्बियों से आपने कहा कि—'आस-पास के गाँवों में निमन्त्रण दिलवा दीजिए।'

परन्तु वे सब कब माननेवाले थे! उन्होंने कहा—'धेला न टुकड़ा, चला है भोज देने!'

तब निराश होकर खुद ही आस-पास के गाँवों में सबको निमन्त्रण दे आए। दूसरे दिन सबेरे ही, पता नहीं कहाँ से चावल, दाल, आटा, घी, चीनी, लकड़ी वगैरह से भरी हुई गाड़ियाँ आपके दरवाजे पर आने लगीं। तब तो गाँववालों ने मिलकर सब सामान तैयार किया। क्रमशः गाँव से इकट्ठे होकर सब लोग आने लगे। अब उनको बैठाया कहाँ जाए। आपकी जो दो-चार फूस-की झोपड़ियाँ थीं, उनमें भोजन-सामग्री पड़ी थी और पाक भी हो रहा था। बाहर मैदान में कड़ाके की धूप पड़ रही थी। बड़ी परेशानी हुई।

आखिर, मां से प्रार्थना की कि—'हे तारिणी! जब यह सब कुछ किया, तो इस समस्या को भी हल कर।'

उसी समय आकाश में इन्द्र भगवान् ने प्राकृत शामियाना तान दिया और ठण्डी हवा बहने लगी। फिर क्या था, मैदान में पङ्गत पड़ गई। 'मां अन्नपूर्णा' का प्रसाद पाकर समस्त जन-समूह ने आपको आशीर्वाद दिया। खास कर उसी दिन से आपकी उज्ज्वल कीर्ति दिशाओं में फैल गई।

बङ्गाल के साधक कहा करते हैं कि जब तक 'वामा-खेपा' के स्थान पर साधक परीक्षा देकर नहीं आता, तब तक वह 'वीर' कहला ही नहीं सकता। वहीं तो वीरों की बलि-वेदी है। बङ्गाल ही क्यों, समस्त भारत के शाक्तों को वहाँ पर जाकर परीक्षा देनी होगी। ऐसे स्थानों पर जो परीक्षा में उत्तीर्ण होता है, वही वास्तव में 'वीर' है।

ऐसा पहले भी एक बार हुआ था। वह 'सत्य-युग' की गाथा है। तत्-कालीन ऋषि - महर्षि, ब्राह्मणादि ब्रह्मा के पुत्र-पौत्रादि होने की वजह से, अल्प प्रयास से ही वेद-वेदाङ्ग के प्रकाण्ड पण्डित हो गए थे। अतः उन्हें अभिमान हो गया था और उसके वशीभूत होकर माँ से विमुख हो गए थे। तब 'नील-सरस्वती' रुष्ट होकर लुप्त हो गईं।

यह स्पष्ट ही है कि वह देश कितने दिन टिक सकता है, जहाँ से विद्या का लोप हो जाय ! जो होना था, वही हुआ। अविद्या ने अपना प्रभाव जमा लिया। चारों तरफ हाहाकार मचने लगा, प्रकृति ने अपना नियम छोड़ दिया। भारत का ज्ञान लुप्त हो गया, लोग अपने-अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गए, सब विपरीताचरण करने लगे। लोग देवता से राक्षस बन गए, चारों तरफ अकाल, महा-मारी, अति-वृष्टि होने लगी।

उक्त व्यापार देखकर ऋषि लोग घबड़ाए और इकट्ठे होकर महर्षि वशिष्ठ के पास गए। उनसे पूछा--'महाराज ! इसका कारण क्या है और किस उपाय से जगत् की मर्यादा बचेगी ? कृपया बताइए।'

वशिष्ठ जी ने कहा- 'आपने जगज्जननी का अपमान किया, उसी का यह परिणाम है। सिवा मां की कृपा और कोई उपाय नहीं। उन्हीं को मनाकर लाइए।'

इस पर ऋषि लोगों ने कहा--'महाराज ! हममें कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो उन 'उग्र-तारा' को मनाकर लाए। आपके सिवा ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो भगवती को प्रसन्न करके जगत् का उपकार कर सके।'

वशिष्ठ जी ने कहा--'अगर मेरे द्वारा कुछ भी जगत् का कल्याण हो सकता है, तो मैं सहर्ष तैयार हूँ। आप लोग भी यथा-साध्य प्रयत्न करिए।'

ऐसा कहकर कुल-पति वशिष्ठ जी ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया और इधर सब लोग उनकी सफलता के लिए यज्ञादि करने लगे। वशिष्ठ एकान्त में तारिणी मां की आराधना एवं स्तुति करने लगे— **'हे जगत् की कारण-स्वरूपे तारे ! आपको जानने में 'ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रादि' भी असमर्थ हैं, हम लोग आपको कैसे समझ सकते हैं ! आप तो मां हैं। वह भी तारिणी माँ ! अब आप हमारे अपराध क्षमा करिए।'**

इस तरह सर्वतो-भावेन जब अपने आपको वशिष्ठ ने माँ को समर्पण कर दिया, तब भगवती ने प्रसन्न होकर उनकी मनो-कामना पूर्ण की। भगवती के आदेशानुसार वे 'वीर-भूमि' में माँ की स्थापना करके, वहीं आराधना करने लगे। इस तरह भगवती ने पुनः भारत को अपनी कृपा-कटाक्ष-द्वारा धन-धान्य, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न किया।

आज भी 'वीर-भूमि' में माँ तारा हैं, वशिष्ठ का आसन भी है, परन्तु कोई वशिष्ठ नहीं है। मेरे कहने का मतलब यह है कि प्रोफेसर, आचार्यादि आधुनिक उपाधियों को छोड़कर माँ के नाम पर खेपा (पागल) बन जाइए, तभी माँ के कृपा-पात्र हो सकते हैं।

आज भी भारत धन-धान्य, ज्ञान-विज्ञान, ऋषि-महर्षि और सिद्ध-गणों से विभूषित हो सकता है। जरूरत है कि सब लोग इकट्ठे होकर अपने कुल-पति चुनकर, उन्हें भगवती का आवाहन करने के लिए प्रस्तुत करें।

माँ की कृपा प्राप्त करने के लिए 'दीक्षा' लेने की उत्कण्ठा होनी स्वाभाविक है, परन्तु उससे पहले यह समझना चाहिए कि रूठी हुई माँ को जो ग्रादर-सहित माँ कहकर पुकारेगा, उसके जैसा प्रिय माँ को कोई नहीं हो सकता। माँ को 'चीनाचार' अधिक प्रिय है. परन्तु उसको समझने के लिए सोचने की जरूरत है और सोचने के लिए देखना चाहिए। 'आध्यात्मिक तत्त्व' से तो हम लोग बहुत दूर हैं, स्थूल चर्म-चक्षुओं से जो हम सामने देखते हैं,केवल वही है।

एक नाद से पूरित, विभिन्न शब्दों द्वारा पूर्यमाण असंख्य अणु-परमाणुओं का आधार अनन्त नीलाकाश और उसकी आकर्षण-शक्ति-द्वारा पालित एवं आकर्षण-विकर्षणोत्पन्न सङ्घ-द्वारा नित्य संहारित तथा अमृत-वर्षण द्वारा सृजित—पहाड़, औषधि, वृक्ष, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, मनुष्यादि यावत् जड़-चेतन जगत् - जो कुछ भी हमें दिखाई दे रहा है, सब एक ही 'शक्ति' का अंश है। और वह 'शक्ति' है, शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी--'माँ तारा !'

सारी दुनिया मानती है कि एक 'पावर' अर्थात् शक्ति जरूर है। ग्राजकल के वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि सृष्टि के आदि से लेकर अद्यावधि जितने भी शब्द हुए हैं, सब आकाश में विद्यमान हैं। इसी भित्ति पर रेडियो और बेतार का तार बना है, परन्तु ग्राधुनिक लोग यह नहीं जानते कि सबसे पहले क्या शब्द हुआ था। हमारे यहाँ उसको 'नाद' कहते हैं। वह जिस वस्तु-विशेष अथवा मनुष्य या देवता-विशेष में, जिस बुद्धि-रूपिणी इच्छा-शक्ति के द्वारा उत्पन्न हुआ, वह शक्ति वाक् - स्वरूपिणी भगवती 'सरस्वती' के अतिरिक्त और कोई नहीं है। शब्द (ब्रह्म) स्वरूपिणी 'नील-वर्णा' है।

'नील-सरस्वती' सर्व-शक्ति-सम्पन्न होने से हर प्रकार की विपत्तियों से उद्धार करती है, जिससे इसे 'तारा' कहते हैं। छोटी-से-छोटी चीज का निर्माण एवं नवीन कार्य करने की बुद्धि का नाम ही 'विद्या' है। फिर भगवती तारा ने तो इतने बड़े जगत् का निर्माण किया, अतः ग्राप 'महा-विद्या' कहलाती हैं। 'उग्रा' पहले कह चुका हूँ। जब शङ्कर दुबारा भगवती की आराधना करेंगे और आनन्द में मग्न होकर नृत्य करते हुए, भगवती के जिस रूप का ध्यान कर विश्व की तन्मात्राओं-सहित वे 'काली' में लय हो जाएँगे, भगवती के उसी रूप का नाम है—'महोग्रा'। इसी तरह रुद्रा (वज्रा), नीला, सरस्वती, कामेश्वरी, भद्र-काली आदि रूपों को भी समझा जा सकता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी माँ तारा द्वारा परिचालित, सृष्टि-स्थिति-लयात्मक अणु-परमाणुओं के व्यापार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए, एक ऐसी 'वेध-शाला' का होना आवश्यक है, जिसमें असंख्य बल्बों जैसा प्रकाश हो, जिसके द्वारा अणु-परमाणुओं का स्फुरण एवं योगादि व्यापार देखा जा सके। मानव शरीर में ऐसी 'वेध-शाला' तृतीय ज्ञान-चक्षु-स्वरूपिणी 'कुण्डलिनी' के अतिरिक्त ग्रौर क्या हो सकती है ?

अतः उठिए और अपनी 'प्रयोग-शाला' में काम-क्रोध-आलस्य ग्रादि के कारण जो अज्ञानता-रूपी जङ्ग लग गया है, उसे साफ करिए और अपनी 'प्रयोग-शाला' को साफ करके माँ तारा द्वारा परि-चालित व्यापार के रहस्य को जानिए।

कहते हैं कि महा-माया की आज्ञानुसार द्वितीया विद्या ने इस 'प्रयोग-शाला' को बनाया और जब यह बनकर तैयार हुई, तब वह स्वयं ही इस पर मोहित हो गई और जैसे धनाधिपति मरने पर अपने सञ्चित कोष की रक्षा के लिए सर्प-रूप ग्रहण करता है, वैसे ही द्वितीया विद्या भी अनन्तानन्द-निधि के द्वार पर सर्पिणी बनकर प्रसुप्त हो गई।

चतुर्दश भुवन, अष्ट-सिद्धि और सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि के रहस्य यहाँ पर छिपे हैं। इनका उद्घाटन कर प्राणियों को धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति कराने के लिए भगवान् शङ्कर द्वारा 'तन्त्र-शास्त्र' का उपदेश किया गया। विशेष रूप से पञ्च - महा - भूतात्मक 'पञ्च-मकार' की व्यवस्था द्वारा भगवान् शङ्कर ने ऐसे 'वीर-मार्ग' का निर्देश किया, जिससे भोग और मोक्ष दोनों की उपलब्धि साधक को हो सके।

वास्तव में, उपर्युक्त 'प्रयोग-शाला' को सु-व्यवस्थित, जाग्रत् एवं क्रिया-शील करने के लिए दो ही मार्ग हैं—(१) प्रति-दिन झाड़ू-बुहारू करते हुए, कूड़ा-कचरा बाहर निकाल फेंकना अर्थात् 'योग-मार्ग' तथा (२) कूड़े को वहीं जला देना और ऐसा सु-व्यवस्था करना कि 'कूड़ा' पुनः एकत्र ही न होने पाए अर्थात् 'तन्त्रोक्त वीर-मार्ग'।

उक्त 'वीर-मार्ग' के लिए क्षाराम्ल-तिक्ताश्रय अग्नि-सत्त्व-प्रधान द्रव्य की आवश्यकता सर्व-प्रथम होती है, जिससे अन्तःकरण साफ एवं सु-व्यवस्थित हो जाए। अतएव 'वीर-मार्ग' में प्रथम तत्त्व 'हाला' का विधान स-विस्तार हुआ। यथा—गुरूपदिष्ट मार्ग द्वारा 'हाला' की शुद्धि कर, प्रथम पात्राहुति-अवस्था में उस चैतन्य-मयी 'हाला' को विश्वास-पात्र में डाल कर, गुरु द्वारा वपन किए हुए बीज-रूपी स्रुवा द्वारा लक्ष्य-प्राप्ति के निमित्त 'आधार-कुण्ड' में उसकी आहुति दे।

'वीर-मार्ग' का यह प्रथम तत्त्व अग्नि-तत्त्व-प्रधान है। अतः स्फुरण-शक्ति को स्थिर रखने के लिए 'वीर-मार्ग' में पुष्टि-तत्त्व-रूपी पृथ्वी-तत्त्वात्मक द्वितीय तत्त्व मांस को आहुति का विधान प्रथम तत्त्व के साथ हुआ। स्फुरण-शक्ति का अभाव फिर भी दूर न होने पर, जनन-शक्ति - उत्पादक जल-तत्त्वात्मक तृतीय-तत्त्व 'मीन' की आहुति का विधान भी प्रथम तत्त्व के साथ हुआ। इससे शक्ति-मान् एवं ज्ञान-शक्ति-सम्पन्न 'प्रयोग-शाला' तैयार हो जाती है। सच्चा ज्ञान होने का अर्थ है—ईश्वर को याद करना। अतः इन तत्त्वों की आहुतियों के बाद 'इष्ट-स्मरण' का निर्देश हुआ।

वायु - तत्त्वात्मक 'अन्न' मोह उत्पन्न करता है—चाहे शुद्ध हो या मलीन। शुद्ध है, तो 'अन्न-मयं मनः'—आपका मन माँ से मिलने को चाहेगा। अतएव तृतीयावृत्ति में प्रथम तत्त्व के साथ 'मुद्रा' (अन्न-पदार्थ) की आहुति का विधान हुआ। साथ ही 'न्यास' का निर्देश हुआ, जिससे शान्ति मिले।

चतुर्थावृत्ति अर्थात् चौथे पात्र ग्रहण करने में प्रथम तत्त्व के साथ उपर्युक्त तीनों की एक साथ 'आहुति' देने एवं 'जप' करने का निर्देश हुआ, जिससे तीनों के मिश्रण से मिश्रित सार-ज्ञान प्राप्त हो सके। फिर पञ्चम आहुति में गुरूपदिष्ट विधि से आकाश-तत्त्वात्मक 'पञ्चम'-तत्त्व (शक्त्युच्छिष्ट) की आहुति देने का विधान हुआ।

तन्त्रोक्त **'वीर-मार्ग'** पर आगे बढ़ने से पहले, **'शाक्ताभिषेक'** के रूप में सबसे पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि मिट्टी, पत्थर, घास, कीट, पशु-पक्षी, मनुष्यादि शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी मां तारिणी के नील-मेघामृत से ही पालित एवं सृजित हैं। दूसरे शब्दों में **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**—इस सिद्धान्त पर दृढ़ रहने के लिए यावज्जीवन 'प्रयोग' करना होगा।

दूसरी बात यह है कि 'प्रयोग'-काल में 'कारण' के साथ वस्तुओं, तत्त्वों की आहुति दे। 'कारण' ही 'कारण' को बतलाता है। अतः 'कारण' के साथ मां तारिणी की कृपा से जो वस्तु मिले, उसकी आहुति दे। साथ ही देखे कि कहीं कुछ रह तो नहीं गया है और यदि रह गया है, तो वह क्या वस्तु है? यही **'महा-पूर्णाभिषेक', 'क्रम-दीक्षा'** एवं **'चीनाचार'** है।

संक्षेप में **'चीनाचार'** की प्रत्येक क्रिया अभीष्ट-परक है। उठना, बैठना, स्नान—सभी क्रियाओं का लक्ष्य है—'आत्म-कल्याण'। यथा—'स्नान' का अर्थ है 'अभीष्ट-परक शुद्धि', अतः शास्त्रोक्त 'चीनाचार' (देखिए 'पुरश्चर्यार्णव तन्त्र') की विधि में लिखा है—

मणि-बन्धादधः पाणिं, पादौ गुल्फादधः शिवे !
मुखं प्रक्षालयेद् देवि ! चीन - स्नानमिदं भवेत् ।।

अर्थात् कलाई से नीचे के हाथ को, घुटने से नीचे दोनों पैरों को और मुख को धोना ही 'चीन-स्नान' अथवा 'अभीष्ट-परक स्नान' है क्योंकि बाहरी और भीतरी विद्युत् का व्यापार हाथों और पैरों के मूल भागों द्वारा ही सम्भव है। उनमें गड़बड़ी होने पर या गन्दगी रहने से कर्म-व्यापार में बाधा अथवा असफलता होने की सम्भावना होती है। मुख में कुछ लगा रहने से आहुति के समय अणु - परमाणुओं के सम्मिश्रण की सम्भावना रहती है अथवा उच्चारण में दोष होने की आशङ्का रहती है।

संक्षेप में, 'चीनाचार' की मूल भित्ति शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी महा-माया 'तारा' हैं और उनका अनुग्रह प्राप्त करना ही साधक का एक-मात्र लक्ष्य है। वर्तमान समय में देश, काल, पात्र-सम्बन्धी विविध विपत्तियों को देखते हुए मां तारिणी के स्मरण के बिना उद्धार होना कठिन ही नहीं, असम्भव है और उसकी कृपा प्राप्त करने का एक ही रास्ता है, वह है—**'चीनाचार'**।

# श्री तारा तारिणी

**'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती**

टूटी ओ फूटी डगामग डोलत नाव महा-भव-सिंधु मझारा,
धीर धरे न डरे मन मोर जु देख चहूँ दिश नीर अपारा ।।
काह करौं कछु सूझ परे नहिं ना कोउ केवट खेवन-हारा,
आकर कौन करे अब पार सु आप बिना तरनी मम तारा ।।
निशि में जेते जगमगे, तारे नभ के माय,
तारा ने तारे उते, परम भक्त समुदाय ।।

# श्री तारा-तत्त्व-निरूपण

(श्रीतारा-कर्पूर-स्तोत्र अथवा श्रीतारा-स्वरूपाख्य स्तव-राज की टीका व व्याख्या)

श्रीकण्ठामर - केश - वर्ण - घटितं चन्द्रार्द्ध - विन्दूज्ज्वलम्,
वीजं यत् - परमं गुण - त्रय - मयं काम-प्रदं मुक्तिदम्।
मातः ! शङ्कर - वल्लभे ! प्रति - दिनं ध्यायन्ति ये ये सदा,
ते ते यान्ति चिदात्मकं हरि - हर - ब्रह्मादि - साम्यं मुदा ।।१

**हे शङ्कर-प्रिये माता ! श्रीकण्ठ (विष्णु) अर्थात् 'अ', अमर-केश अर्थात् 'उ'—इन दोनों वर्णों के संयोग से बना जो वर्ण अर्ध-चन्द्र और विन्दु (ँ) से प्रकाशित है, उस सबसे बड़े (ॐ) वीज का, जो तीनों गुणों से उत्पन्न कामनाओं अर्थात् ऐहिक या सांसारिक कामनाओं और मुक्ति का देनेवाला है, नित्य जो-जो लोग चिन्तन करते हैं, वे-वे सभी चित्स्वरूप अथवा ब्रह्मा, विष्णु, शिव के समान ही चैतन्य होते हैं ।।१**

यह भगवती तारा या 'शब्द-ब्रह्म' की स्तुति है। स्तुति-कार स्वयं 'शिव' हैं। इनका भगवती को 'माता' और 'शङ्कर-वल्लभा' कहना रहस्य से खाली नहीं है। इससे इन शिव से अपर - शिव से ही तात्पर्य है और माता कहना बाह्य दृष्टि से भी ठीक है क्योंकि 'कारणत्व' का सूचक ही 'मातृत्व' है, जो जन्म-हेतु का व्यपदेशत्व है। यह 'समष्टि-मातृत्व' और 'व्यष्टि - मातृत्व' दोनों का बोधक है—निरपेक्ष भेद से विश्व-मातृत्व और सापेक्ष भेद से व्यष्टि - मातृत्व। 'मातृ' - शब्द का ब्रह्म - परतत्त्व स्वतः सिद्ध है। इसी से अन्तिम या चरम महा-भूत आकाश-रूपी तारा भगवती शिव के द्वारा मातृ-रूप से सम्बोधित की गई हैं।

'शङ्कर-वल्लभा' का तात्पर्य है परम - कल्याण करनेवाले अर्थात् त्रि-ताप से मुक्त करनेवाले की प्रिया अर्थात् समान गुणवाली। शङ्कर से यहाँ 'पुराण पुरुष' या 'धर्मी शक्ति' या 'चित् - स्वरूप प्रकृति' से तात्पर्य है। इससे शक्ति से शक्ति-मान् का अभेदत्व सिद्ध होता है।

भगवती 'प्रणव'—अ+उ+ँ=रूपा हैं। इसे 'तार' या 'तारक - वीज' भी कहते हैं। इसी के स्त्री-लिङ्ग - वाचक शब्द—'तारका' का रूप 'तारा' है। 'ध्यायन्ति' का अर्थ है—'ध्यान' करते हैं, किन्तु इसका तात्पर्य है तत्त्व के निरन्तर मनन से। 'ध्यान' के केवल पढ़ लेने से ही काम नहीं चलता। प्रणव (ॐ) या वीज के तत्त्वार्थ-ज्ञान का चिन्तन ही 'ध्यान' है, जैसे रूप-कल्पना के लक्ष्यार्थ का सोचना 'ध्यान' है। 'ध्यान' से मोक्ष और भौतिक तथा दैविक कामनाओं—दोनों की प्राप्ति होती है। 'ध्यान' से ही साधक विष्णु अर्थात् ब्रह्म हो जाता है।

व्योमार्णं वाम - नेत्रान्वितमनल - युतं विन्दु - चन्द्रार्ध-युक्तम्,
वीजं ते गुह्यमेतत् त्रिभुवन - जननि ! त्रि-क्षणे ये जपन्ति।
तेषां वक्त्रारविन्दे विहरति मधुरा गद्य - पद्यावली गी—
र्मातश्चन्द्रार्ध - चूडे ! सकल-भय हरे ! सिद्ध-भाजां नराणाम् ।।२

**हे तीनों लोकों को उत्पन्न करनेवाली, समस्त दुःखों को हरनेवाली, अर्ध - चन्द्र को मस्तक पर रखनेवाली माँ ! तुम्हारा गुप्त वीज, जो चन्द्रार्ध-विन्दु (ँ) सहित व्योमार्ण (ह), वाम नेत्र (ई), अनल (र)—इनके संयोग से बना वर्ण अर्थात् 'ह्रीं' है, उसका जो तीनों समय जप करते हैं—उन सिद्धि - प्राप्त मनुष्यों के मुख - कमल में सरस्वती मीठे गद्य और पद्य की धार-स्वरूपा होकर विचरण करती हैं ।। २**

'त्रि-भुवन' से यहाँ तात्पर्य है—१ ज्ञातृ, २ ज्ञान, ३ ज्ञेय या १ मातृ, २ मान, ३ मेय—इन तीन अवस्थाओं से । यही व्यष्टि की तीनों अवस्थाएँ हैं । इन्हें १ जाग्रत्, २ स्वप्न और ३ सुषुप्ति या १ विश्व, २ तैजस् और ३ प्राज्ञ भी कहते हैं । समष्टि में इनका साधारण अर्थ है – १ स्वर्ग, २ मर्त्य और ३ पाताल । इनका सूक्ष्मार्थ है, 'ब्रह्म' के त्रि-रूप—१ अशुद्ध, २ मिश्र या ३ शुद्धाशुद्ध और शुद्ध ।

'सकल-भय - हरा' के दो अर्थ हैं । एक समस्त भयों अर्थात् आध्यात्मिक, आधि - दैविक और आधि-भौतिक – तीनों तापों को हरनेवाली और दूसरा सकल अर्थात् सब जीवों के भयों को हरनेवाली ।

'विन्दु-चन्द्रार्ध-युक्तम्' के भी कई तात्पर्य हैं । यह 'नाद-विन्दु' का द्योतक है, जैसा इसका रूप है । संक्षेप में 'अर्ध-चन्द्र' का तात्पर्य अमर-कारिणी शक्ति से है और 'विन्दु' का घनी-भूत चिदचित् शक्ति से । इसी विन्दु से 'नाद' और 'वीज' की उत्पत्ति होती है । यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूपों के परे तुरीय रूप का द्योतक है ।

'माता' शब्द की पुनरुक्ति है । यह व्यष्टि-मातृत्व का बोधक है । यह भक्ति - योग के सम्बन्ध-स्थापन की क्रिया को दिखाता है । तान्त्रिक साधना में यह विशेषता है कि उसमें प्रायः सभी दार्शनिक भावों को भक्ति-यौगिक रूप देकर ब्रह्म-विद्याओं की प्रतिपत्ति की गई है । भक्ति-योग में सम्बन्ध-स्थापन अत्यन्त आवश्यक है और सभी सम्बन्धों में माता-पिता के दो सम्बन्ध ही प्रमुख हैं । इन दोनों में भी माता का सम्बन्ध श्रेष्ठ है ।

'ह्रीं' वीज का भाव संक्षेप में इस प्रकार है—आकाश-द्योतक 'ह' का तात्पर्य है—'सृष्टि', वह्नि-द्योतक 'र' का—'संहार' और 'ई' (वाम नेत्र में है, इसी से मातृका-न्यास में 'ई' का बाँएँ नेत्र में न्यास होता है) का तात्पर्य है—'स्थिति' । अतएव 'ह्रीं' वीज त्रि-शक्त्यात्मक तुरीय ब्रह्म और नाद-विन्दु से युक्त होने से तुरीयातीत-बोधक है ।

'गुह्य' से तात्पर्य है वीज के सूक्ष्मार्थ से ।

'त्रि-क्षणे' अर्थात् तीनों समयों का वाच्यार्थ प्रातः, मध्याह्न और सायं-काल की त्रि - सन्ध्या है, परन्तु भाव है जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्था से ।

'जप' का तात्पर्य यहाँ 'मानसिक जप' से है, क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति - अवस्थाओं में केवल यही हो सकता है, अन्य प्रकार के 'जप' नहीं । 'जप' मन्त्रार्थ का चिन्तन है, न कि केवल मन्त्र का उच्चारण । इसी चिन्तन से अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । इस 'जप' या चिन्तन से जीव के ऐसे तादात्म्य-भाव हो जाते हैं कि उसकी समस्त क्रियाएँ देव-वत् हो जाती हैं ।

शुक्रार्णं पूतनास्थं कलित - शशि -कला - विन्दु-भूषं सवह्नि—
भ्राजद् वामाक्षि-युक्तं जननि ! तव बधू - वीजमेतज्जपन्ति ।
ते ते लोलेक्षणानां विगलित - रसना - पीन - वक्षोज-वासः,
केशानां चित्तमाशु स्मर - हर-महिले ! मोहयन्ति प्रकामम् ।। ३

**हे माता ! तुम्हारा शुक्र (स), पूतना (त), वह्नि (र), वामाक्षि (ई)—इनके संयोग से बना वीज, जो शशि-कला (ँ) से भूषित है, उस वधू नामक 'स्त्रीं' वीज को जो जपते हैं, हे काम - देव के नाश करनेवाले (शिव) की स्त्री ! वे चञ्चल नेत्रवाली रमणियों को, जिनके ऊर्ध्व और अधो - वस्त्र तथा केश-बन्धनों के शिथिल हो जाने से गिर गए हैं, मोहित करने में शीघ्र ही और इच्छानुसार समर्थ होते हैं ।।३**

वधू-वीज 'स्त्रीं' का यथार्थ रूप केवल 'त्रीं' है । यही भगवती तारा का सबसे प्रधान वीज है । ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने इस महा-विद्या की आचार-विरुद्ध साधना की, तो उन्हें सिद्धि नहीं प्राप्त हुई और उन्होंने इस बीज को शाप दे दिया कि इस बीज द्वारा महा-विद्या किसी को सिद्ध न हो, परन्तु बाद में अपनी भूल समझकर शाप का उद्धार इस प्रकार किया कि यह शाप कृष्णावतार तक ही लागू होगा और तब तक के लिए इस बीज में 'स-कार' युक्त कर देने से यह शाप दूर हो जाएगा । इसका 'वधू' नाम इसलिए पड़ा कि स्त्री की यह पर्याय-वाचक संज्ञा है और वधू की तरह फल-दायिनी है ।

'स्मर-हर' अर्थात् काम के नाशक का भाव है अथवा मलिन वासना का नाशक यथार्थ ज्ञान । यथार्थ ज्ञान होने से अर्थात् शुद्ध वासना के उदय होने से अपर-काम का स्वतः नाश हो जाता है । इसी का पौराणिक कथानक-रूप है—महा-देव के तृतीय ज्ञान-चक्षु के तेज या बुद्धि से काम-देव अर्थात् 'अपर-काम-पुञ्ज' का दहन ।

'लोलेक्षणानाम' अर्थात् 'चञ्चल नेत्रवालियों' से तात्पर्य थोड़े समय तक रहनेवाली सिद्धियों से है । ये सिद्धियाँ बड़ी चञ्चल होती हैं । योगी को योग-भ्रष्ट कर हट जाती हैं । वधू-वीज के यथार्थ जप से साधक इन्हें अपने वश में कर लेते हैं ताकि ये उनको भ्रष्ट कर भाग न जायँ ।

'विगलति-रसना', 'पीन-वक्षोज-वासः' और 'केशानाम्' का तात्पर्य है सिद्धियों से, जो अपने आवरण-बन्धन के टूट जाने से साधक से दूर हो गई हैं । साधक जान जाता है कि ये सिद्धियाँ वस्तुतः उस परमानन्द-रसामृत के सामने अति तुच्छ हैं । इसीलिए वह स्वयं उनके वश में न होकर उन्हीं को अपने वश में रखता है ।

ईशानं वाम-कर्णोल्लसित-शशि-कला - विन्दु - युक्तं प्रगुह्यम्,<br>
वीजं मातस्त्वदीयं यदि जपति जनो वारमेकं जडात्मा ।<br>
चञ्चत् - पञ्चाशदुग्र - ग्रथित-नर - शिरो-मालिका-क्रान्त-कण्ठे !<br>
मातः ! शैलेन्द्र - पुत्रि ! त्रिभुवनमपि संक्षोभयत्येव शीघ्रम् ।।४

**हे हिमालय-कन्ये ! पचास नर-मुण्डों की माला धारण करनेवाली मां ! ईशान या शिव-वीज (ह), वाम-कर्ण (ऊ), अर्थात् 'हू', शशि-कला और विन्दु (ँ) से युक्त 'हूँ' । तेरे इस गुप्त वीज का जो एक बार भी जप करता है, वह तीनों लोकों को सम्यक् प्रकार से शीघ्र ही क्षुभित कर सकता है अर्थात् उनकी अवस्था बदल दे सकता है ।।४**

'शैलेन्द्र-पुत्रि' दार्शनिक सूक्ष्म-भाव की साहित्यिक कल्पना है । इसका भाव आनन्द या अमृत-लहरी है । सहस्रार-स्थित सोम-मण्डल का ही व्यञ्जक है हिम-गिरि । कवियों ने उससे उत्पन्न लहरी या धारा को ही हिम-गिरि-सुता कहा है अन्यथा तीनों लोकों की जननी पर्वत-राज की कन्या कैसे हो सकती है ! यह कवियों की कल्पना और साहित्यिक अलङ्कार है । इस अलङ्कार-रहस्य का ज्ञान गम्भीर अनु-सन्धान से ही होता है, अन्यथा यह अविश्वास का कारण हो जाता है ।

पचास नर-मुण्डों की माला से तात्पर्य है पचास वर्णों से, न कि मनुष्य के मुण्डों से ! भगवती नित्या है अर्थात् वह मानव जाति की सृष्टि के पूर्व भी थी और लय के पश्चात् भी रहेगी। इस अवस्था में उसको मनुष्य क्योंकर मिले और मिलेंगे, जो इनको मार कर मुण्डों की माला पहनेगी ? फिर भगवती सबकी माँ हैं। वह क्या अपनी सन्तानों को मार कर मुण्ड-माला बनाएगी ! ऐसा विचार साधारण बुद्धि-वाला भी न करेगा। शास्त्रों में इसका मतलब साफ-साफ 'वर्ण-माला' लिखा है।

'प्र-गुह्यं' ('सु-गुह्यम्' भी पाठ है) का तात्पर्य श्रेष्ठ भाव से गुह्य है। अन्य बीज केवल गुह्य हैं अर्थात् छिपे भाववाले हैं, परन्तु यह वीज विशेष प्रकार से छिपे भावों का रखनेवाला है। इसका कारण यह है कि भगवती ने आदि में अपने को इसी वीज में प्रकट किया है। माता तारा हूङ्कार-वीजोद्भवा हैं। यही वीज ध्वनि, नाद आदि संज्ञाओं से कथित है। अव्यक्त ब्रह्म इसी के द्वारा सर्व-प्रथम नाद के रूप में व्यक्त होता है। अतएव तारा भगवती शब्द-ब्रह्म ही हैं।

'वारमेकं' अर्थात् एक बार का तात्पर्य बड़ा रहस्य-मय है। इससे जप-क्रम का बोध होता है। यह उस जप का द्योतक है, जिसकी एक आवृत्ति ही सर्वदा के लिए तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर देती है। तभी साधक ऐसा प्रतिभाशाली हो सकता है कि तीनों लोकों को डाँवाडोल कर दे।

पश्चादस्त्रं तदन्यत् पुर - हर - महिले ! वीजमत्यन्त-गुह्यम् ।
भालोद्यत्-पञ्च - मुद्रे ! प्रकट - विकट-दंष्ट्रोग्र - वक्त्रारविन्दे !
नित्यं ये भावयन्ति प्रति - दिनममले ! घोर - रूपाट्टहासे !
ते नूनं भ्रामयन्ति त्रि-जगदघ-हरे । चक्र - वद् विश्वमेतत् ।।५

**हे पुर के हरण करनेवाले अर्थात् शिव की स्त्री ! हे मस्तक-प्रदेश में पञ्च-मुद्राओं को धारण करनेवाली ! हे निकले हुए विकट दाँतों से उग्र मुख-कमलवाली ! पूर्वोक्त वीजों के बाद अत्यन्त गुप्त वीज 'अस्त्र' अर्थात् 'फट्' का नित्य जो चिन्तन करते हैं, वे अवश्य इस विश्व को पहिए के सदृश घुमाते हैं ।।५**

यहाँ शिव का विशेषण है पुरों का हरनेवाला। इसका पौराणिक कथानक यह है कि त्रिपुर नामक एक असुर को शिव ने मारा था। तभी से शिव 'पुर-हर' या 'त्रिपुर-हर' कहलाने लगे, परन्तु इसका दार्शनिक तात्पर्य है तीनों पुरी या स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के परे पर-शरीरवाले शिव से अथवा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीन अवस्थाओं से परे तुरीयावस्थापन्न शिव या ब्रह्म से। इनकी स्त्री या शक्ति को 'पुर-हर-महिला' कहते हैं। व्यष्टि में ऐसे संसिद्ध जीवन की शक्ति को कहते हैं।

'पञ्च-मुद्रा-विभूषिता' के कई तात्पर्य हैं। इससे भगवती तारा पञ्च-ब्रह्मात्मिका है, ऐसा बोध होता है। पञ्च-ब्रह्मात्मिका से चित् और अचित् ब्रह्म-रूपिणी या उभय-परिणामिनी नित्या सत्ता का बोध होता है।

निकले हुए दाँतों से तात्पर्य है स्व-प्रकाश सत्त्व-गुण-सूचक उजली दन्त-पंक्ति से, जिसके द्वारा लाल और लोल अर्थात् चञ्चल जिह्वा को, जो रजो-गुण की द्योतक है, दबा रखा है।

'अमला' अर्थात् मल-रहिता से तात्पर्य है विशुद्ध सत्त्व-गुणात्मिका से।

'घोर-रूपाट्टहासा' का तात्पर्य सदा आनन्द-मयी से है।

'त्रि-जगदघ-हरा' का साधारण तात्पर्य ऊपर के रहनेवाले देव-गणों, मध्य में रहनेवाले मानवों और नीचे रहनेवाले राक्षसों के भी पाप हरनेवाली से है, परन्तु इसका भाव है ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय-रूपी त्रिपुरी-भाव को हरनेवाली तुरीया ब्रह्म-विद्या से।

'फट्' को अस्त्र इसलिए कहा गया है कि इससे अविद्या को मार भगाया जाता है। इसे 'मन्त्र-पल्लव' भी कहते हैं। मन्त्र के छः पल्लव होते हैं—नमः, स्वाहा, वषट् इत्यादि। इसी हेतु 'पश्चात्' का यहाँ निवेश है। जैसे अन्य वीज स्वतन्त्र भी जपे जाते हैं, वैसे 'फट्' का जप नहीं होता।

सार्द्ध-पञ्चाक्षर-मन्त्र—**'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'** इस महा-विद्या का मन्त्र-राज है। फल-स्वरूप विश्व का चक्र-वत् भ्रमण होता है। विश्व-भ्रमण का तात्पर्य है काल से मुक्ति।

माया-स्त्री-कूर्च - वीजैर्नव-तपन-हरित् सार्द्ध - चन्द्रांशु-वर्णे !
मातर्न्नीलाख्यमेतत् तव मनुमनिशं ये प्रकामं जपन्ति।
वित्ते वित्तेश-तुल्याः सुर - गुरु - सदृशास्तर्क - काव्यागमादौ,
ते ते नीलाम्बुदाली - रुचि-रुचिर-तनो ! काम-रूपा भवन्ति ॥६

**हे उदय-कालिक सूर्य के वर्णवाली, चन्द्रिका-समान शीतल-ज्योति-रूपिणी माँ! माया (ह्रीं), स्त्री (स्त्रीं) और कूर्च (हूं)—इस प्रकार बने 'ह्रीं स्त्रीं हूं' नीलाख्य मन्त्र का जप जो सर्वदा पर्याप्त रूप में करते हैं, वे, हे नवीन मेघ की कान्ति - सदृश सुन्दर शरीरवाली! धन में कुबेर के समान, तर्क - शास्त्र, काव्य और आगम में देवताओं के गुरु वृहस्पति के समान और इच्छा के अनुसार रूप धरनेवाले अर्थात् सिद्ध योगी हो जाते हैं ॥६**

इसमें तीन रङ्ग तीनों वीजों के वर्ण के विशेषण-स्वरूप कहे गए हैं। माया-वीज लाल है, स्त्री-वीज हरित और कूर्च अर्ध-चन्द्र से समान धवल है। नील - वर्ण से शुद्ध - सत्त्व - गुणात्मक घन तेजोमय चिदाकाश का तात्पर्य है अर्थात् भगवती एकत्रित शुद्ध-सत्त्व-गुण के प्रकाश-स्वरूप चिदाकाश-स्वरूपिणी हैं। इनकी उपमा 'अम्बुद' से की गई है। अम्बुद का अर्थ अम्बु अर्थात् जल को देनेवाला है। जल है ज्योति, प्राण या अमृत या अमरत्व देनेवाला इत्यादि। उपमा से यह बोध होता है कि जिस प्रकार नील-मेघ तप्त पृथ्वी को जल की वृष्टि से शीतल करता है, उसी प्रकार भगवती अपनी करुणा - रूपी अमृत-धारा या आनन्द की लहरी से त्रि-पाद-दग्ध जीवों के तापों को हर कर उन्हें शीतल करनेवाली हैं।

इस पद्य में कथित तीनों वीजों से तारा के चैतन्य-रूप नील - सरस्वती का प्रधान मन्त्र बनता है। सरस्वती के उपासक केवल विद्वान् होते हैं, परन्तु इस नील - सरस्वती के उपासक विद्वान् ही नहीं, कुबेर के समान धनवान और प्राकाम्य (इच्छानुसार रूप बदलना) सिद्धिवाले भी हो जाते हैं।

भवान्येभिर्वीजैर्हिम - गिरि - सुते ! चास्त्र - सहितै—
र्निगूढं ये मातस्तव मनुं जपन्त्येक - जटिले !
त्रि-यामा - नाथार्ध - प्रविलसित - भाले ! त्रि - नयने !
गृहे तेषां नित्यं निवसति मुदा सिन्धु - तनया ॥७

**हे भवानी, हिमालय की पुत्री ! माता एक-जटे ! पूर्वोक्त (तीनों) वीजों को अस्त्र (फट्) से युक्त करके जो नितरां गुप्त भाव से जपते हैं, हे चन्द्रार्ध-शोभित-मस्तके ! हे तीन लोचनवाली ! उनके घर में लक्ष्मी सदा वास करती हैं ।।७**

इस पद्य में एक-जटा भगवती का अर्ध-चतुरक्षर मन्त्र और उसके रहस्य-भाव से जप करने का फल वर्णित है ।

'भवानी' का अर्थ भव की शक्ति है । 'भव' शिव का एक नाम है । 'भव' विश्व को भी कहते हैं । शिव विश्व हैं अर्थात् विश्व-रूप हैं । विश्व जिस शक्ति से उत्पन्न है, जिस शक्ति द्वारा इसकी स्थिति है और जिसमें इसका लय है, उसी को 'भवानी' कहते हैं ।

'एक-जटा' का भाव है वह महा-शक्ति, जिसने तीनों गुणों को सत्त्व - गुण में एकत्रित कर रखा है अर्थात् जो शुद्ध-सत्त्व-गुणात्मिका है ।

'निगूढम्' का अर्थ है बिलकुल गुप्त । मानसिक जप तीन प्रकार से गुप्त होता है । परा-जप ही निगूढ़ है । उससे कम पश्यन्ती और उससे भी कम मध्यमा है ।

'नित्यम्' का अर्थ है सर्वदा । यह इसलिए कहा गया है कि लक्ष्मी चञ्चला है, किन्तु इस मन्त्र को 'निगूढ़' भाव से जपने से वह स्थिरा हो जाती है । लक्ष्मी विज्ञान-शक्ति को कहते हैं ।

अमीभिर्वीजैस्ते प्रणव - सहितैः शैल - तनये !
निज - स्वान्ते सास्त्रं परि - जपति पञ्चाक्षरमिति ।।
स सिद्धः स त्यागी स तु पुर - हरोऽसौ मुर - हरः ।
स धाताऽसौ मुक्तो भवति हि चिदानन्द - रसिके ! ।।८

**हे पार्वती ! जो प्रणव या ॐकार-युक्त नील-सरस्वती के पञ्चाक्षर-रूप वीजों (तीनों वीजों) के अन्त में अस्त्र-वीज (फट्) देकर अन्तःकरण में जपता है; वही, हे ब्रह्मानन्द-रस को चखनेवाली ! सिद्ध है, त्यागी है और मुक्त है । अधिक क्या, वह साक्षात् पुर के हरनेवाले शिव, मुर राक्षस को मारनेवाले विष्णु और ब्रह्मा के समान है ।।८**

इस पद्य में तारा भगवती के सार्द्ध-पञ्चाक्षर मन्त्र-राज और उसके मानसिक जप का माहात्म्य है । 'मन्त्र-राज' सर्व-प्रधान मन्त्र को कहते हैं । प्रत्येक देवता का एक 'मन्त्र-राज' होता है । इससे देवता का पूर्ण-स्वरूप ज्ञात होता है, जो वीज मात्र से स्पष्ट नहीं होता । मन्त्र और वीज में यही भेद है कि वीज संकुचित अवस्था का द्योतक है और मन्त्र विकसित अवस्था का । जिस प्रकार नील-सरस्वती, एक-जटा और उग्र-तारा—इन तीनों का संयुक्त रूप तारा भगवती हैं, उसी प्रकार साढ़े पाँच अक्षरों का यह मन्त्र पूर्वोक्त तीनों महा-शक्तियों के संयुक्त वीजों से बना है ।

'परि-जपति' से तात्पर्य विशेष प्रकार के जप से है । यह जप मण्डल-क्रम से हृदय के गुह्य-से-गुह्य स्थान में होता है । संक्षेप में तात्पर्य है कुण्डली-सूत्र से ग्रथित वर्ण-माला में निरन्तर जप करने से । ऐसा जप निद्रा में भी होता रहता है ।

'सिद्धि' से तात्पर्य मन्त्र-सिद्धि या देवता के साक्षात्कार से है । 'त्यागी' से कर्म-फल-त्यागी और 'मुक्त' से जीवन्मुक्त से तात्पर्य है । त्याग के बिना शान्ति या मुक्ति नहीं मिलती और बिना सिद्धि त्यागी

हो नहीं सकता । सार की प्राप्ति होने पर ही असार की त्याग-बुद्धि आती है । ऐसे ही सिद्ध साधक शिव या क्रिया-शक्ति, विष्णु या ज्ञान-शक्ति और ब्रह्मा या इच्छा-शक्ति के समान होते हैं ।

शवासीनां कण्ठे कलित - नृ - करोटीं कर - लसत्—
कपालासि - श्यामोत्पल - रुचिर - कर्त्रीं त्रि - नयनाम् ।।
नवाम्भोद - श्यामां विकट - रद - भीमां पृथु - कुचाम् ।
सदैव त्वां ध्यायन् जननि ! स जडो वाक् - पति-समः ।।९

**हे माता ! शव पर सवार, गले में मुण्ड-माला धारण किए हुए, हाथों में खप्पर, तलवार, कैंची और नील-कमल लिए हुए, तीन आँखवाली, विकट दाँतों के कारण भयानक उन्नत स्तनवाली, नवीन मेघ के सदृश श्याम-वर्णवाली तुम्हारा जो सर्वदा ध्यान करता है, वह मूर्ख भी बृहस्पति के समान होता है ।।९**

इस पद्य में भगवती का ध्यान और उसके फल का वर्णन है । ध्यान पढ़ लेने ही से काम नहीं चलता । ध्यानों के आध्यात्मिक तात्पर्य का जानना आवश्यक है । तभी ठीक से ध्यान हो पाता है ।

तटे नद्याः सिन्धोर्गिरि - शिरसि मालूर - गहने ।
श्मशाने गोष्ठे वा गिरिश - भवने शून्य - सदने ।।
हविष्याशी लक्षं प्रजपति वशी - भावन - परः ।
स सर्वज्ञो वाग्मी भवति सु - जनो पीन - जघने ! ।।१०

**हे विशाल नितम्बवाली ! जो हविष्य-भोजी, जितेन्द्रिय, ध्यान में लीन हो, नदी या समुद्र के तट पर या पर्वत-शिखर, विल्व के वन, श्मशान, गो-शाला अथवा शिवालय में या एकान्त में लक्ष बार मन्त्र का जप करता है, वह सब कुछ जाननेवाला, वक्ता और सुन्दर पुरुष होता है ।।१०**

इस पद्य में मन्त्र-साधन का स्थान, उसकी मुख्य विधि और जप-संख्या माहात्म्य-सहित वर्णित है । हविष्य है सत्त्व-रस-वर्धक भोजन । भोजन साधनोपयोगी मानस भाव के अनुकूल रस उत्पन्न करनेवाला ही होना चाहिए क्योंकि जैसे मन का प्रभाव शरीर या इन्द्रियों पर पड़ता है, वैसे ही शरीर का प्रभाव मन पर पड़ता है । सत्त्व-गुणाश्रित साधनाओं के लिए हविष्य या निरामिष भोजन ही प्रशस्त है ।

बिना 'वशी' हुए या इन्द्रियों को वश में रखे बिना 'भावन-परः' अर्थात् भावना या चिन्तन में साधक लीन नहीं हो सकता और जब मन वश में आता है, तभी इन्द्रियों का निग्रह होता है । 'भावन-परः' होकर ही जप करना चाहिए । ध्यान-रहित जप विडम्बना मात्र है ।

'सर्वज्ञ' का मतलब है सब शास्त्रों को जाननेवाला । विशेष प्रकार के स्थानों से निःसङ्गता का बोध होता है । आध्यात्मिक साधन में सङ्ग वर्जित है ।

मुदा मातः ! शुद्धोदक - रुचिर - गन्धाक्त - सलिलैः ।
स्वयम्भू - पुष्प-स्रक् - कुल - तनु - भग - क्षालित - जलैः ।।
शिवे ! त्वां संध्यायन् हर - महिषि ! सन्तर्पयति यः ।
सदैव स्त्री - वृन्दं वशयति स विद्याधर - पतिः ।।११

**हे माता ! जो शुद्ध जल में सुन्दर गन्धों से वासित द्रव्य से, (अथवा) अपने आप होनेवाले फूलों की धारा (विश्व) कुल-स्वरूप जननेन्द्रिय के परिष्कृत द्रव्यों से, हे शिव की शक्ति ! हे शिव - स्वरूपे ! तुम्हारा सम्यक् प्रकार से ध्यान करते हुए सम्यक् प्रकार से तर्पण करता है, वह विद्याधरों का स्वामी होता है और कामिनी-गणों को सर्वदा अपने वश में कर लेता है ।।११**

इस पद्य में स्थूल और सूक्ष्म भाव के 'तर्पण' का उनके फल-सहित उल्लेख है। स्थूल है मन्दाधिकारियों के लिए और सूक्ष्म मध्यम तथा उत्तम अधिकारियों के लिए है। मध्यमाधिकारी विषय के भाव को लक्ष्य में रख वाह्य क्रिया करते हैं और उत्तमाधिकारी ज्ञान या लय-योग-क्रम से मानसिक क्रिया का अथवा हठ-योग के अन्तर्गत कुण्डली-योग-क्रम से यथार्थ क्रिया का सम्पादन करते हैं।

'तर्पण' का स्थूल अर्थ है प्रसन्न करना और आध्यात्मिक तात्पर्य है आत्मा और ब्रह्म में अभेद-भावना। यह अभेद-भावना तभी होगी, जब साधक को तर्पण-द्रव्य के रहस्य का ज्ञान होगा। साधारणतया विशेषार्घ्य के अमृत से देवता का तर्पण होता है। यह विशेषार्घ्यामृत विशेष ज्ञान का द्योतक है।

शुद्ध जल से मन्त्र-शोधित जल से तात्पर्य है। 'उदक' और 'सलिल' दोनों का अर्थ जल है। अतएव 'सलिल' से तात्पर्य है नारिकेलोदक, घृत, मधु, शर्करोदक इत्यादि द्रवित पदार्थ और 'रुचिर-गन्धाक्त' से तात्पर्य है कस्तूरी, कर्पूर, चन्दनादि सुगन्धित विहित पदार्थों से।

'स्वयम्भू-पुष्प-स्रक्' का भाव विश्वोत्पादक महद्-योनि की रजो-गुणात्मक धारा अथवा व्यष्टि में कुण्डली-योगानुसार मूलाधार-स्थित मातृ-योनि के अग्नि-मण्डल की रक्त-ज्वाला है। 'कुल' शक्ति का अर्थात् रजो-द्योतक है। इसी प्रकार 'अकुल' शिव का द्योतक है। संक्षेप में विश्व - मातृ - योनि की रजो-धारा को सत्त्व गुणात्मक जल-सम्वित् में मिला कर जीव और शिव के ऐक्य (तर्पण) की भावना करना ही तर्पण है।

'भग' का एक अर्थ ऐश्वर्य है, इसी से ईश्वर को भगवान् कहते हैं। इस रजो - गुणात्मक ऐश्वर्य को सत्त्व-गुण से हटा कर जीव अपने को शिव समझता है।

'सन्ध्यायन्' का अर्थ है असली रूप का ध्यान करते हुए और 'सन्तर्पयति' का अर्थ है सम्यक् प्रकार से तर्पण अर्थात् ऐक्य की भावना करते हुए। 'विद्या-धर' का यहाँ अर्थ है महा - विद्या या ब्रह्म-विद्या या मधु-विद्या-सिद्ध पुरुष या ज्ञानी। ऐसे विद्या-धर का पति या प्रधान होना आध्यात्मिक भावापन्न परा-तर्पण का फल है। बाह्य तर्पण का फल है सिद्धियों की प्राप्ति।

'स्त्री'-वृन्द से तात्पर्य सिद्धियों से है, न कि साधारण स्त्रियों से। स्त्री-समूह को वश में करना तो लम्पटता है, जो किसी भी शास्त्र के विरुद्ध कार्य है।

जवा - पुष्पैर्बिल्वैर्मरु - वकुल - मुख्यैश्च कुसुमैः ।
सुगन्धैः कर्पूरैरगरु - सहितैर्धूप - निकरैः ।।
प्रदीपैरुज्ज्वालैर्घृत - रचित - नैवेद्य - निकरै—
स्तवार्चा यः कुर्य्यात् स भवति हि पूज्यः क्षिति - पतेः ।।१२

**जो तेरी पूजा गुड़हल, बिल्व - पत्र, मरु, मौलसरी आदि प्रधान फूलों, कर्पूर - युक्त अगर आदि सुगन्धित धूपों, उज्ज्वल दीपों और घी से बने नैवेद्यों से करता है, वह राजाओं से सम्मानित होता है ।।१२**

पूजा से यहाँ मिश्र पूजा अर्थात् पराऽपरा पूजा से तात्पर्य है। पराऽपरा पूजा में बाह्य क्रियाएँ रहती हैं। 'पुष्प' मनोवृत्ति का द्योतक है। १ अहिंसा, २ दम, ३ दया, ४ क्षमा और ५ ज्ञान—ये ही पाँच प्रकार के पुष्प हैं, जिनसे जगज्जननी की वास्तविक पूजा अर्थात् तादात्म्य प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त १ अमायता, २ अनहङ्कारता, ३ अराग, ४ अमद, ५ अमोह, ६ अदम्भ, ७ अद्वेष, ८ अक्षोभ, ९ अमात्सर्य और १० अलोभ—ये दस पुष्प और हैं। पुष्प-समर्पण का भाव है—अपने शरीर के भूताकाश के अंश को चित्-शक्ति को समर्पण कर अर्थात् उसी से अपने शरीर के भूताकाश भाग को ओत-प्रोत समझ कर अपने को चैतन्य-रूप समझना। धूप-समर्पण का भी यही सूक्ष्म अर्थ है। भेद इतना ही है कि धूप को अपने शरीर का वायव्य भाग समझे। दीप में अपने शरीर का तेजो-भाग और नैवेद्य में रस या अमृत-भाग की जड़ता समर्पित होती है। तभी चिन्मात्रता रह जाती है।

स दूर्वाभिः पद्मैस्त्रि - मधु - ललितैः श्री - फल - दलै—
घृतैर्गव्यै रक्तैः सु - कुल - भग - लिङ्गामृत - रसैः।
त्रि - कोणे कुण्डे यो हुतवह - मुखे होम - विधिना।
जुहोति त्वां मातः! स भवति कवीन्द्रः क्षिति - पतिः ।।१३

**हे माता ! जो दूर्वाओं, त्रि-मधु अर्थात् शकर, घी और मधु से सने पद्मों, गाय के घी से सने विल्व-दलों और सुकुल-भग-लिङ्गामृत नामक रक्त और शुक्ल - मिश्रित द्रव्य से त्रिकोणाकार कुण्ड में हवन-विधि के अनुसार अग्नि के मुख में हवन करता है, वह कवियों का राजा और भू-पति होता है ।।१३**

इस पद्य में पूजा के विशेष अङ्ग हवन, हवनीय द्रव्य और हवन के फल का उल्लेख है। 'होम' का अर्थ त्याग है। यह त्याग पदार्थ का नहीं, किन्तु भाव का होता है। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य कामादि मनोवृत्तियों के भस्मीकरण से है। बाह्य हवन अन्तर्हवन अर्थात् ज्ञानाग्नि में मन के सङ्कल्पों के त्याग का द्योतक है। 'दूर्वा' (दूब) सब पुष्पों के समान है। 'त्रि-मधु' त्रिगुण का द्योतक है, जिसमें सने कमल के फूल अर्थात् विश्व-भाव या इदन्ता-भाव को हवन या लय करना होता है। 'विल्व - दल' से भी, जो तीन पत्तों का एक दल होता है, त्रिगुण से तात्पर्य है। इस त्रिपुटी को गो - घृत से विशुद्ध कर अर्थात् इन्द्रियों ('गो' इन्द्रिय को भी कहते हैं) की तन्मात्राओं के साथ भस्मीकरण कर्त्तव्य है।

'रक्त' से रजो-गुणात्मक भावों से तात्पर्य है। रक्त और शुक्ल-मिश्रित सृजन पदार्थ का भाव है सृजक से सृष्टि का भेद-भाव। इस द्वैत-भाव का लय करना ही उक्त पदार्थ से हवन करने का तात्पर्य है।

'कुण्ड' अनेक प्रकार के होते हैं। गोल कुण्ड अखण्डाकार - वृत्ति का और त्रिकोणाकार कुण्ड विशुद्ध त्रिपुटी का द्योतक है। इसी भाव से हवन करनेवाला 'कवीन्द्र' अर्थात् शब्द - ब्रह्म का ज्ञानी और 'क्षिति-पति' अर्थात् संसार का स्वामी अर्थात् ब्रह्म होता है।

निशीथे कल्याणि ! प्रमुदित - मना यो पितृ - वने।
बलिं ते मेषाद्यैः स नर - महिषैर्वा परि - चरेत् ।।
स राजानं क्षिप्रं वशयति मृगाक्षी - समुदयम्।
त्रिलोकीं वा भूमौ स भवति नरः सत् - कवि - वरः ।।१४

**हे कल्याण - रूपे ! जो प्रसन्न-चित्त होकर आधी रात को श्मशान में तुझे मेढ़े आदि या मनुष्य के साथ भैंसों की बलि देकर तेरी पूजा करता है, वह जल्दी ही राजा, मृग-नयनियों और तीनों लोकों को भी अपने अधीन कर लेता है और संसार में बड़ा भारी कवि होता है ।।१४**

इसमें गुप्त साधन-प्रक्रिया का उल्लेख है, जिसके अधिकारी विरले ही हैं । 'कल्याणी' शिवा की पर्याय-वाचक संज्ञा है । कल्याण का साधारण अर्थ दुःख से निवृत्ति है । यहाँ दुःख से जन्म-मरण के दुःख से तात्पर्य है । अर्थात् कल्याणी से मोक्ष-दायिनी से तात्पर्य है ।

'प्रमुदित' का अर्थ आनन्दित है । भगवती आनन्द - मयी हैं । अत. उनकी पूजा बिना साधक के आनन्दित हुए नहीं हो सकती । यहाँ पूजा के भाव अद्वैत या विशिष्टाद्वैत मात्र हैं । दुखी या निरानन्द भी अपने दुःख की निवृत्ति के हेतु पूजा करता है । ऐसी पूजा शुद्ध द्वैत भाव की है ।

'निशीथ' अर्थात् आधी रात का स्थूल अर्थ है मध्य - रात्रि का समय, किन्तु इसका भाव है सुषुप्ति-अवस्था या प्रज्ञावस्था । प्रज्ञा ही ऐसी पूजा कर सकता है । पूजा का स्थान श्मशान है ।

इस पद्य का आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि प्रज्ञा श्मशान में अर्थात् शुद्ध हृदय से, जिसमें कामादि सभी आसुरी सङ्ग भस्म हो गए हैं, आनन्दावस्था में मोहादि-रूपी मेषादि पशु-गुणों या अहङ्कार या जीव-भाव के साथ महिष-व्यञ्जित क्रोध-सर्गों की बलि देकर अर्थात् भगवती से आत्मैक्य की साधना करता है ।

महा - पूजां मातस्तव वितनुते यस्तु मधुना ।
तथा मांसैर्मत्स्यैर्विविध - नव - मुद्रादिभिरपि ।।
वर - स्त्रीभिः सार्धं निधु - वन - विनोदेन मुदितो ।
निशीथे संसारात् स भवति विमुक्तः पशु - भयात् ।।१५

**हे माता ! जो आनन्दित हो मध्य-रात्रि के समय स्त्रियों के साथ सुरत-प्रमोदित हो मद्य, मांस, मछली और नौ प्रकार की मुद्राओं से तुम्हारी सबसे बड़ी पूजा विस्तृत रूप से करता है, वह पशु-पाश-रूप संसार के बन्धन से छूट जाता है ।।१५**

इस पद्य में आनन्द-मार्ग या वीर-भाव और दिव्य-भाव की साधना का उल्लेख है । वीर साधक स्थूल पदार्थों और क्रियाओं के भाव को ध्यान में रखते हुए ही स्थूल रूप की क्रिया करते हैं और दिव्य साधक ज्ञान-योग अथवा हठ-योग के द्वारा पञ्च-तत्त्वों के यथार्थ रूपों से ही साधन-क्रिया सम्पादित करते हैं । इन्हें स्थूल पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती ।

वीरों की साधना का क्रम 'प्रतीकालम्बनाधार' कही जा सकती है । वीर साधक स्वभावतः आनन्द में होता हुआ भी पूजा के पूर्व सम्विदानन्द के हेतु सम्विदा का ग्रहण करता है और दिव्य साधक ज्ञान-योग के द्वारा 'जल-सम्वित्' का आस्वादन करता है अथवा हठ-योग के द्वारा कुण्डली अर्थात् जीव-शक्ति को सलिल-तत्त्वात्मक चक्र-छेदन कर 'जल-सम्वित्' का अनुभव करता है । वीर परमानन्द के स्फुरण के निमित्त स्थूल रूप से मद्य-पान (वेद-विहित सोम-पान) इष्ट-देवता को कराते हुए स्वयं करता है और दिव्याचारी ज्ञान-योग से ब्रह्म-ज्ञान-रूपी मद्य का पान करता है ।

वीर साधक पशु-पक्षी के मांस को पशुत्व अर्थात् जीव-भाव को नष्ट करने के लिए ही आत्म-स्थित देवता को अर्पित करता है और दिव्य-साधक ज्ञान-योग के क्रम से परात्म-सुख देनेवाले निर्विषय

भाव को ग्रहण करता है। वीर साधक अहङ्कार, दम्भ, मद, पिशुनता, मात्सर्य और द्वेष के व्यञ्जक रूप मत्स्यों को चिदग्नि में अर्पण कर स्वात्म-चिन्मात्रता-भाव ग्रहण करते हैं और दिव्य साधक ज्ञान-योग के द्वारा इन्द्रिय-निग्रह कर मत्स्य-रूपी संयम का आस्वादन करते हैं।

हठ-योग के अनुसार यही भाव इस प्रकार है कि गङ्गा (इड़ा नाड़ी) और यमुना (पिङ्गला) नदियों या नाड़ियों में बहनेवाली रजो-गुण और तमो-गुण-रूपी धाराओं में रहनेवाली मछलियाँ राजसिक और तामसिक सर्ग-विकार हैं, जिन्हें हठ-योगी प्राणायाम आदि क्रियाओं द्वारा नष्ट कर सुषुम्ना-पथ या सरस्वती या सत्त्व-गुण में लय कर लेता है। भक्षण की पर्याय-वाचक संज्ञा लय भी है। हठ-योगी मांस और मत्स्य-भक्षण खेचरी आदि मुद्रा-साधन से भी करते हैं।

वीर साधक आठों प्रकार की मुद्राओं के द्योतक आशा, तृष्णा, जुगुप्सा, भय, घृणा, क्रोध और सम्मान भावों का ही लय (भक्षण) करते हैं और दिव्य साधक ज्ञान-योग के द्वारा पृथ्वी-तत्त्व की, जिसकी द्योतक मुद्रा है, जड़ता का लय करते हैं। हठ-योग के द्वारा मूलाधार-चक्र का भेदन कर जल-तत्त्व में उसे लय करते हैं।

वीर साधक विहित शक्ति का सङ्ग—सामरस्य शिव-शक्ति-सामरस्य की भावना से ही करता है और दिव्य-साधक ज्ञान-योग के द्वारा आत्मा और परमात्मा के मिथुन-संयोग-रूप मैथुन-क्रिया का सम्पादन करता है तथा हठ-योग के द्वारा कुण्डली या प्राण-शक्ति को सहस्रार में ले जाकर पर-शिव से संयुक्त करके मैथुन-क्रिया करता है।

पञ्च-तत्त्वात्मक पूजा की संक्षेप में यही भावना है। इसे अच्छी तरह समझना जरूरी है क्योंकि जिस प्रकार पूजा की भावना का ज्ञान न होने से उसका पूरा फल नहीं मिलता, उसी प्रकार पञ्च-मकार या पञ्च-तत्त्वों का भाव समझे बिना वह अभिचार-रूप हो जाता है। यह पञ्च-तत्त्वात्मिका पूजा श्रौत यज्ञों का ही दूसरा रूप है। यज्ञ के निन्दक भले ही इसको निन्दा करें।

त्रि - कोणे पीठे त्वां वर - निधु - वनासक्त - हृदयाम्।
महा - कालेनोद्यत् पुलक - निचयां स्मेर - वदनाम्॥
स्वयं नक्तं कान्ता - रति - रस - समासक्त - हृदयो।
मनुष्यो यो ध्यायेद् भवति शिव - तुल्यः स धरणौ॥१६

**जो मनुष्य स्वयं नग्न हो अपनी भार्या के सङ्ग-सामरस्य का आनन्दानुभव करते हुए तुम्हारे मुसकुराते वदन और महा-काल के साथ श्रेष्ठ सामरस्य के कारण पुलकित स्वरूप का ध्यान त्रिकोण-पीठ पर करता है, वह पृथ्वी पर शिव-तुल्य होता है॥१६**

इस पद्य में ध्यान-सम्बन्धी रहस्य-पूर्ण विधि का उल्लेख है। इस प्रकार का ध्यान करने का अधिकार सबको नहीं है क्योंकि इसका भाव समझना जन-साधारण की बुद्धि के परे है।

'नग्न' का तात्पर्य है माया-विकार से रहित अर्थात् अद्वैत - बुद्धि से युक्त। जिस प्रकार कपड़े शरीर के आवरण हैं, उसी प्रकार जीव-भाव या अविद्या आत्मा का आवरण है। इसी जीव - भाव के कारण आत्मा अपने को परमात्मा से भिन्न समझती है। अतएव जीव-भाव का हटना ही यथार्थ में 'नग्न' होना है।

'कान्ता' या भार्या से जीव की प्राण-शक्ति से मतलब है । इस प्राण-शक्ति के सङ्ग सामरस्य से तात्पर्य जीव-भाव और शिव-भाव के सामरस्य अर्थात् ऐक्य से है । संक्षेप में इस प्रकार के ध्यान का आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि साधक अविद्या के आवरण और विक्षेप—द्वय मल से रहित होकर अपने शरीर की आत्मा-प्रत्यात्मा की ऐक्य-भावना से परात्मा-रूपिणी चिद्-धर्मी शक्ति को महा-काल-रूपी धर्म-शक्ति से अभिन्न समझता है । महा-काल से सामरस्य का तात्पर्य है देश-काल के भाव का लय करके चिन्मात्रतावशेष होना ।

आत्मा का ही विशुद्ध-रूप प्रत्यगात्मा है । 'शिव-तुल्य' से तात्पर्य जीवन्मुक्तावस्था से है, जिसमें जीव-भाव के लय होने पर शिव-भाव अर्थात् 'ब्रह्माहमस्मि' का भाव रह जाता है । 'त्रिकोण पीठ' के कई भाव हैं । ज्ञातृ, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी को त्रिकोण कह सकते हैं और 'त्रिकोण' से योन्यात्मक पीठ अर्थात् मातृ-योन्यात्मक पीठ से भी तात्पर्य है । 'त्रिकोण-पीठ' दूसरे प्रकार का श्मशान भी है ।

समुत्तुङ्गापीन - स्तन - जघन - राजत् - कुल - वधू—<br>
व्यवाय - व्यासक्तो जपति तव भक्तो यदि मनुम् ।।<br>
गलद् - वासः केशो जननि ! मनुजो मेदिनि - तले ।<br>
स सिद्धीशः शक्त्या जयति सु-चिरं सर्व - सुजनम् ।।१७

**हे माता ! जिसके वस्त्र गिर पड़े हैं और केश खुल गए हैं, ऐसा तुम्हारा जो भक्त उन्नत स्थूल-स्तन तथा जघनों से शोभित कुल-नायिका से ऐक्य में विशेष रूप से आसक्त होकर तुम्हारे मन्त्र को जपता है, वह पृथ्वी पर सिद्धियों का स्वामी होकर बहुत समय के लिए सभी अच्छे मनुष्यों पर अधिकार रखता है ।।१७**

इस पद्य में अति गुह्य साधन और उसके माहात्म्य का उल्लेख है । इसके कई तात्पर्य हैं । सर्व-प्रथम साधक की मानसिक अवस्था दिखाई है । साधक भक्त है क्योंकि बिना भक्ति के साधना हो नहीं सकती । उस पर ऐसी साधना तो बिना अनन्य भक्त हुए सम्भव ही नहीं । फिर साधक 'गलद्-वासः' क्यों ? उसकी मनोवृत्ति अब सम्पूर्ण-तया अन्तर्मुखी हो चुकी है । वह इतना तल्लीन है कि उसे खबर नहीं कि उसके वस्त्र खुल कर गिर पड़े हैं । वह 'मुक्त-केश' है अर्थात् उसे सङ्कल्प-विकल्प की भावना ही नहीं रही ।

ऐसा ही ज्ञानी साधक 'कुल-वधू' के साथ अभिन्न-भाव से मन्त्र का जप कर सकता है । 'कुल-वधू' से कुण्डली-योग में 'कुण्डली' से, हठ-योग में 'शाम्भवी मुद्रा' से, मन्त्र-योग में 'शाम्भवी विद्या' से और ज्ञान-योग में असंवेदन-रूपा ज्ञान की 'छठी भूमिका' से तात्पर्य है । ऐसे ही साधक अणिमादि आठों सिद्धियों के स्वामी होते हैं और पृथ्वी पर अर्थात् इसी स्थूल पञ्च-तत्त्वात्मक शरीर में चिर-जीवी होकर सभी सनुष्यों के पूज्य हो जाते हैं ।

भवानि ! श्रीमार्तनिज - गलित - वीर्याप्त - चिकुर—<br>
मथ प्रेम्णा लब्ध्वा वचन - भुवनेशी - युत - मनुम् ।।<br>
समुच्चार्य्यं क्षोणी - तनय - दिवसे प्रेत - सदने ।<br>
स दीर्घायुर्वाग्मी भवति शत - होमात् क्षिति - तले ।।१८

**हे भवानि ! हे श्रीमाता ! इसके बाद जो मङ्गलवार को श्मशान में भक्ति - पूर्वक वचन (वाग्-वीज ऐं) और भुवनेश्वरी (ह्रीं) से युक्त मन्त्र का सम्यक् प्रकार से उच्चारण करके अपने सामर्थ्य - युक्त केश के सौ बार हवन करता है, वह पृथ्वी पर दीर्घायु और अच्छा वक्ता होता है ॥१८**

इस पद्य में मन्त्र-योजना के अनुसार हवन-विधि और उसके फल का उल्लेख है। मन्त्र के आदि में वाग्-वीज की योजना वाग्मित्व अर्थात् अच्छी वक्तृत्व-शक्ति देने के निमित्त है। माया - वीज युक्त करके जप या हवन करने से आयु बढ़ती है। होम - द्रव्य भी दो हैं। सामर्थ्य या शक्ति को चिदग्नि में समर्पण करने से प्राण-शक्ति बढ़ती है और 'केश'-व्यञ्जित अज्ञान - वृत्ति के दहन से ज्ञान की वृद्धि होती है, जिससे वाग्मी होता है।

इस विधि और द्रव्य-द्वय के रहस्य को गुरु से ही समझना चाहिए। यहाँ इतना उल्लेख करना उचित होगा कि यह कुण्डली-योग की क्रिया है, जिसके विभिन्न साधन ज्ञान-योग में और हठ-योग में हैं। यह क्रिया मूलाधार-चक्र-स्थित मातृ-योनि (त्रिकोण) में स्वयम्भू लिङ्ग के वीर्य या प्राण-शक्ति कुण्डली को अग्नि-तत्त्वात्मक मणिपुर-चक्र में ले जाने पर होती है।

अजस्रं यो मन्त्रं जपति भूमीधर - सुते !<br>
विचिन्त्याग्रे मातः ! कुसुम - ललितं मार - भवनम् ॥<br>
धरण्यां कन्दर्प - प्रतिम - तनु - भृतः स सकलान् ।<br>
निजेष्टानाप्नोति प्रविशति मुदा तारिणि - पदम् ॥१९

**हे माता हिमालय-कन्ये ! जो पुष्पों से शोभित काम-भवन को देखता और इसका चिन्तन करता हुआ मन्त्र का अविरत रूप से जप करता है, वह पृथ्वी पर कन्दर्प के समान सुन्दर होकर अपने समस्त अभीष्टों को प्राप्त करता है और तारिणी-पद अर्थात् परम पद का लाभ करता है ॥१९**

इस पद्य में एक विशिष्ट प्रकार के जप-साधन का उल्लेख है। इसका आध्यात्मिक रहस्य यह है कि 'काम' अर्थात् इच्छा-भवन अर्थात् अवस्था उसके पुष्प अर्थात् कार्य का ज्ञान रखते हुए अर्थात् चित्-शक्ति की **'एकाऽहं बहु स्याम'** इच्छा जब हुई अर्थात् जब पर-विन्दु में स्पन्दन हुआ और इससे शुक्ल और रक्त दोनों अपर-विन्दुओं का स्फुटन हुआ, जिससे रजो - धारा अर्थात् रजो - गुणात्मक प्रपञ्च का कार्य प्रारम्भ होने लगा, तब की ऐसी सत्ता का ज्ञान अर्थात् कार्य - कारणाभेद का ज्ञान अर्थात् **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** के ज्ञान-पुरस्सर जप अर्थात् मनन करने से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

तमो - ग्रस्ते चन्द्रे यदि जपति लोकस्तव मनुम् ।<br>
नवम्यां वा मातर्धरणि - धर - कन्ये ! वितनुते ॥<br>
तथा सूर्य्ये पृथ्वी - वलय - तिलकः काव्य - तरनी-<br>
पयोधिः सिद्धीनां भवति भवनं सर्व - विदितः ॥२०

**हे माता, हिमालय की पुत्री! यदि कोई मनुष्य चन्द्र-ग्रहण के समय अथवा नवमी या रविवार को ('सूर्य' का सूर्य-वार से भी तात्पर्य है और सूर्य-ग्रहण से भी) तुम्हारे मन्त्र का जप करता है, वह पृथ्वी पर सबसे बड़ा काव्य - धाराओं का समुद्र (भाण्डार), सर्व - विख्यात और सिद्धियों का निवास - स्थान होता है ॥२०**

इस पद्य में मन्त्र-पुरश्चरण के विशिष्ट समयों का उल्लेख है। 'ग्रहण-समय' सूर्य या चन्द्र-ग्रहण के आदि (स्पर्श) से लेकर अन्त (मुक्ति) तक के समय को कहते हैं। इसमें जप-संख्या का नियम नहीं है।

'चन्द्र' या 'सूर्य ग्रहण' के कई तात्पर्य हैं। जो समष्टि में है, वह व्यष्टि में भी है, यह एक तथ्य है। समष्टि के चन्द्र-सूर्य-ग्रहणों के स्थूल रूप तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, परन्तु व्यष्टि में लगनेवाले 'ग्रहणों' को केवल कुण्डली-योग-सिद्ध साधक ही देख सकते हैं।

अज्ञानियों के लिए चन्द्र-ग्रहण तो सर्वदा ही रहता है क्योंकि उनके चन्द्र-मण्डल की चन्द्रिका उनकी पृथ्वी अर्थात् मूलाधार-चक्र तक आती ही नहीं। बीच ही में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-ग्रन्थियों से रुक जाती है। यह रुकावट चैतन्यावस्था के मन्त्र-जप से हटती है। यही अवस्था सूर्य-ग्रहण अर्थात् सूर्य-ज्योति के रुकावट की भी है।

ज्ञान-योग में चन्द्र-मण्डल से सात्त्विक भावनाओं से और सूर्य-मण्डल से राजसिक भावनाओं से तात्पर्य है। सात्त्विक वृत्ति पर छाया या अविद्याऽऽवरण हो, तो मन्त्र-जप अर्थात् मनन की अनेक आवृत्तियों को आवश्यकता होती है। इसी प्रकार राजसिक वृत्ति पर अर्थात् मिश्र शुद्धाशुद्ध तत्त्व-वृत्ति पर तामसिक आवरण हो, तो ऐसा ही उपाय करना पड़ता है।

नवमी तिथि का उल्लेख भी रहस्य-पूर्ण है। शास्त्रों में ९ को विराट् विश्व-पुरुष का द्योतक बताया है। दश महा-विद्याओं की शृङ्खला यहा बताती है। आद्या शून्य-रूपिणी है। उसी के रूपान्तर ९ महा-विद्याएँ हैं। संहार या लय-क्रम से गिनने पर तारा विद्या ही नवमी महा-विद्या है। इसी से नवमी तिथि तारा भगवती के साधन में प्रशस्त है।

'वितनुते' शब्द भी सार-गर्भित है। ग्रहण का पुरश्चरण जहाँ थोड़े समय तक ही सीमित है, वहाँ नवमी तिथि के पुरश्चरण का विस्तृत रूप है क्योंकि तिथि की अवधि सामान्यतः ६० दण्ड है। इसके अतिरिक्त 'मनुं वितनुते' का तात्पर्य मन्त्र के विस्तृत रूप से भी है।

'सूर्य' से वार-पुरश्चरण का भी बोध होता है, जिसे उदयोदय-पुरश्चरण कहते हैं।

सदा पादाम्भोजे भ्रमतु हृदयं भृङ्ग इव मे।
सदा पाणि-द्वन्द्वं परिचरतु कर्णस्तव कथाम्॥
शृणोतु त्वत्-कीर्तिं हर-महिषि! गीर्गायतु सदा।
सदा दृष्टिर्भूयाद् भवदनुचरालोकन-परा॥२१

**हे शिवे! आपके चरण-कमलों में मेरा हृदय भृङ्ग-वत् भ्रमण करे, मेरे दोनों हाथ परिचर्या करें, कान आपकी कथाएँ सुनें, वाणी यशो-गान करे और सर्वदा आप पर ही मेरी दृष्टि रहे॥२१**

इस पद्य में स्तुति-कार अथवा पूर्व-कथित साधनों-द्वारा संसिद्ध साधक की प्रार्थना है। अब साधक का कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है। साधक के प्राण और इन्द्रियाँ निर्विषय हो गई हैं। उसका प्राण-रूपी मधुकर सच्चिदानन्द-विग्रहा तारिणी के पाद-पद्म के मधु के सिवा अन्य कुछ भी पान नहीं करता। उसकी आँखें त्रिपुर-सुन्दरी माता तारा को छोड़ किसी को नहीं देखतीं क्योंकि उसकी दृष्टि 'परा' अर्थात् दिव्य हो चुकी है। कान भी 'परा'-शब्द या अनाहत-ध्वनि के सिवा और कुछ नहीं सुनते। फिर वाणी वैखरी-रूप महा-वाक्य के अतिरिक्त और हो ही क्या सकती है? हाथ भी 'आत्म-प्रीणन'—अतः 'परात्म-प्रीणन' कर्म हो करते रहते हैं क्योंकि अब आत्मा और परात्मा में अभेद की अनुभूति हो गई है।

कदा काले शैलेश्वर - तनु - भवे ! पाद - युगलम् ।
मुदा द्रक्ष्ये ब्रह्म - प्रमुख - विबुधानां परिणुतम् ।।
कृपा - पारावारे ! भव - जनन - भीतैक - शरणे !
शरण्ये ! कारुण्यं मयि वितर दीने भगवति ! ।।२२

**हे पर्वत-राज-कन्ये ! ब्रह्मादि देवताओं द्वारा वन्दित तेरे पाद-युगल को आनन्दित होकर कब देखूँगा ? हे करुणा-मयि ! जन्म-मरण-रूपी दुःख से रक्षा करनेवाली, शरण देनेवाली भगवति ! मुझ दीन पर कृपा कर ।।२२**

इस पद्य में साधक की चरम प्रार्थना है पूर्ण-तन्मयता के लिए, जिसके हेतु 'दीन' अर्थात् अहङ्कार-हीन होकर वह भगवती की कृपा-दृष्टि चाहता है । कोई लाख साधन करे, किन्तु 'उसकी' कृपा के बिना कुछ भी होने की बात नहीं । जब आप साधना करते हैं, तब 'वही' उपयुक्त गुरु के रूप में आकर आपको साधन-प्रणाली का उपदेश करती है । 'उसकी' कृपा से ही आपकी साधना सम्पन्न होती है और आप उसे पाने के अधिकारी हो जाते हैं । यह बुद्धि-योग देनेवाली करुणा-मयी समष्टि-व्यष्टि-मातृ-रूपिणी तारा ही है । 'दीन' अर्थात् निरहङ्कार पर ही 'उसकी' कृपा होती है । इसी दीनता या अनन्य-शरण्यता से ही साधक को सर्वोच्च फल प्राप्त होता है ।

फल-श्रुति

सदैव स्तोत्रं यः पठति मुदितः साधक - वरो ।
न दारिद्र्यं तस्य प्रभवति कदाचित् क्षिति - तले ।।
त्रि - वर्गो हस्ते स्याज्जगदखिलमेतच्च वशगम् ।
चिरं जीवन्नन्ते जननि ! लभते मोक्ष - पदवीम् ।।२३

**हे माता ! जो साधक-श्रेष्ठ प्रसन्न-चित्त होकर सर्वदा स्तोत्र का पाठ करता है, वह पृथ्वी पर कभी या किसी दशा में दरिद्र नहीं रहता । उसके हाथ में अर्थ, धर्म और काम तीनों पुरुषार्थ रहते हैं । अधिक क्या, सारा संसार ही उसके वश में रहता है । वह चिर-जीवी रहकर अन्त में अर्थात् मरण के उपरान्त मोक्ष-पद को पाता है ।।२३**

इस पद्य में स्तोत्र के पाठ-फल का उल्लेख है । इसमें 'सदैव' का तात्पर्य है सर्वदा मनन से । 'पठति' का भी अर्थ केवल पढ़ना नहीं है, शब्द के अर्थ-ज्ञान-सहित विधि-पुरस्सर पाठ को ही 'पाठ' कहते हैं । 'मुदितः' का तात्पर्य है पूर्ण अनुराग-रञ्जित हृदय से । 'साधक-वरः' का तात्पर्य है साधन - सम्पन्न व्यक्ति से और 'मोक्ष-पदवी' से कैवल्य मुक्ति से तात्पर्य है ।

इदं स्तोत्रं मातः प्रपठति दिवा - रात्रिमनिशम् ।
स सर्वज्ञो योगीश्वर - निकर - चूड़ामणि - समः ।।
जडोऽपि त्वद् - रूपं जपति यदि संचिन्त्य मनसा ।
त्वदग्रे भूयोच्चैः क्षिति - पति - समानः क्षिति - तले ।।२४

**हे माता ! मन्द-बुद्धि भी यदि तुम्हारे रूप का मानसिक चिन्तन करता हुआ इस स्तव का बार-बार उच्च-स्वर से तुम्हारे सामने दिन-रात पाठ करे, तो वह त्रि-कालज्ञ और प्रत्येक वस्तु का वेत्ता होता है ! वह योगियों के अग्र-गण्य और चक्रवर्ती राजा के समान पृथ्वी पर रहता है ।।२४**

इस पद्य में सर्वोच्च पाठ-विधि के फल का उल्लेख है। पाठ किस प्रकार का हो, यह बताया गया है। इस स्तव के पाठ का उद्देश्य केवल कीर्तन ही नहीं है। इस पाठ से भगवती के मननात्मक और निदिध्यासात्मक क्रिया-स्वरूप मन्त्र-जप, हवन, तर्पण, बलिदान इत्यादि सभी के अन्तस्तात्पर्य के ज्ञान से तात्पर्य है। उसी ज्ञान का यह फल होता है कि जड़ भी अर्थात् मन्द-बुद्धि अकृतोपासक अर्थात् जिसने उपासना नहीं की है, वह भी इस प्रकार के पाठ करने से ब्रह्म-ज्ञानी होकर सर्वज्ञ और सर्व-श्रेष्ठ हो जाता है। यहाँ 'क्षिति-पति' का तात्पर्य सर्व-श्रेष्ठ से है। 'त्वदग्रे' का भाव अखण्डाकार चित्त-वृत्ति से है अर्थात् इष्ट का ही अखण्ड ध्यान रखते हुए जप करने से है।

महा - पुण्यं धन्यं सकल - पुरुषार्थैक - निलयम्।
यशस्यं चायुष्यं सतत - भव - तापापहमिदम् ।।
रहस्यं प्राकाम्यं नहि खलु कदाचित् पशु - जने।
पठेत् पूजा - काले जननि ! लभते मोक्ष - पदवीम् ।।२५

।। श्रीफेत्कारिणी-तन्त्रे श्रीतारा-कर्पूर-स्तोत्रं समाप्तम् ।।

**हे माता ! महा-पुण्य देनेवाले, धन्य करनेवाले, चारों पुरुषार्थ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को देनेवाले, यश और आयु के बढ़ानेवाले तथा संसार के अनवरत दुःखों को दूर करनेवाले इस स्तोत्र का रहस्य, किसी भी अवस्था में, अज्ञानी मनुष्यों को नहीं बताना चाहिए। पूजा-समय में इसका पाठ करना चाहिए। इससे मोक्ष मिलता है ।।२५**

इस अन्तिम पद्य में प्रस्तुत स्तव-राज के रहस्य को 'पशु' अर्थात् अनधिकारी को बताने से मना किया गया है। जिस प्रकार ब्रह्म-विद्या का प्रकाशन अनधिकारी के सामने निषिद्ध है, उसी प्रकार मिश्र कर्म-काण्ड और ज्ञान-काण्ड की तान्त्रिक रहस्योपासना अज्ञानियों को नहीं बतानी चाहिए क्योंकि इससे बतानेवाले और सुननेवाले—दोनों का ही अनिष्ट सम्भव है।

शाक्त-दर्शन के अनुयायी को सर्प-क्रीड़ा-वत् अति कठिन क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। यह हलाहल विष पीकर अमर होने के समान है। अपना अस्तित्व मिटाकर दिव्य अस्तित्व बनाना पड़ता है। यह 'कौल'-साधना है, जो योग की साधना से भी कठिन है। 'कौल'-साधना के ही विशेष रूप इस स्तव-राज में प्रतिपादित हैं। यह साधना सद्-गुरु की कृपा के बिना प्राप्त नहीं होती।

# तन्त्र-मार्ग की तारा-विद्या

**(प्रख्यात सिद्ध महात्मा वामा क्षेपा के उपदेशों के आधार पर)**

'भोग' एवं 'योग' में जो भेद दिखाई पड़ता है, वह सत्य नहीं है। स्थूल दृष्टि से 'भोग' मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग में बाधा-स्वरूप है, 'योग' ही मोक्ष-प्राप्ति का उपाय है, परन्तु असल बात यह है कि 'भोग' भी तुम्हारा है और 'योग' भी तुम्हारा है। 'भोग' भी तुम और 'योग' भी तुम ही हो। तुम सर्व-मय हो। स्थल, जल, अनल, अनिल, आकाश आदि सर्वत्र तुम विराजमान हो।

तुम ही क्षित्यप्-तेजो-मरुद्-व्योमादि भोग्य वस्तु हो और तुम्हीं हो भोक्ता जीव। 'भोग' का कारण तुम ही हो। 'भोग' का कारण दो प्रकार का है–१ अन्तः, २ बाह्य।

बाह्य भोग—पञ्च-कर्मेन्द्रिय एवं पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय के दस भागों में विभक्त है । अन्तःकरण त्रि-विध है—यथा मन, अहङ्कार एवं बुद्धि । उन पञ्च-विध भोग्यों में 'मन' का निवेश करने से अपने ही प्रति मनो-निवेश होता है ।

अतः 'भोग' और 'योग' विभिन्न वस्तुएँ नहीं हैं । 'भोग' में ही 'योग' और 'योग' में ही 'भोग' है । जिन ज्ञानियों का विचार इस प्रकार का उच्च है, जो 'भोग' तथा 'योग' को समान समझते हैं, उनकी वासनाओं को पूर्ण करने के लिए भोग-योगात्मक दिव्य-भाव-मय अद्भुत 'तन्त्र-मार्ग' की रचना हुई है ।

'तन्त्र'-साधना का उच्चतम स्तर है—'श्रीतारा-विद्या' । यह बहुत ही गम्भीर तथा बहुत ही गुप्त विद्या है । इसकी साधना करना भी कठिन है क्योंकि यह विद्या स्वयं ब्रह्म-स्वरूपिणी है । इस विद्या के बल से ही जीव ब्रह्मत्व प्राप्त करता है ।

श्रीतारा विद्या का आचार 'वाम' है, जो संसार के प्रतिकूल, साधारणतया कदर्य्य है, परन्तु वास्तव में परम सुन्दर है । इस आचार में विधि-निषेध नहीं है; शुचि-अशुचि नहीं है; दिग्-देश-कालादि का नियम भी नहीं है । प्राणों से भी अधिक 'प्रिय' को चाहने में—हृदय-वल्लभ को बुलाने में—अपने आत्मीय के साथ स्वयं मिलने में कालाकाल क्या ? उत्तर-पूर्व क्या ? और शुचि-अशुचि क्या ?

उक्त प्रकार का उच्च-भाव जीव में नहीं है । इसीलिए 'संयम' की आवश्यकता है । एक ही बार में कोई सभी सोपानों का अतिक्रम नहीं कर सकता । इसीलिए 'कर्म-मार्ग' में विधि-निषेध का पालन करना होता है और 'भक्ति-मार्ग' में कीर्त्तन-वन्दनादि करना आवश्यक होता है । 'योग-मार्ग' में पहले ब्रह्मचर्य, सत्य और अस्तेय आदि की व्यवस्था है । 'ज्ञान-मार्ग' में भी शम-दम-तितीक्षा और उपरति आदि चार साधन विहित हैं, परन्तु चरम विद्या 'श्रीतारा-विद्या' के लिए वैसी विधि हो ही नहीं सकती । हाँ, उन विधि-निषेधों का पालन कर चुकने पर जब 'भाव' जाग्रत हो, तब 'श्रीतारा-विद्या' की साधना के अधिकारी लोग हो सकते हैं ।

इसी कारण 'श्रीतारा-विद्या' वशिष्ठ मुनि जैसे मनस्वी साधक में स्फुरित हुई थी । इस विद्या को समझने में उन जैसे त्रि-काल-दर्शी ब्रह्मर्षि को भी विलम्ब हुआ था । पहले उन्होंने भी सोचा था कि केवल 'शुद्धाचार' से 'श्रीतारा' मिलती हैं, और 'शुद्धाचार' से ही उन्होंने ही श्रीतारा-माता की आराधना की । अन्त में 'वामाचार' द्वारा प्रवृत्ति के अतीत होकर ही श्रीतारा-विद्या के दर्शन पाने में वे सफल हुए थे ।

'श्रीतारा-विद्या' के प्रभाव से बाद में अनेक जीव मुक्त हुए। इन्हीं प्राचीन मुक्त पुरुषों ने जीव-कल्याण के लिए कृपा करके इस विद्या को पृथ्वी में प्रचलित किया। ये ही लोग इस 'अकुल' भव-सागर में 'कुल'-दाता हैं।

प्रकृति से लेकर क्षिति तक चौबीसों तत्त्व ही 'कुल' अथवा 'गण' कहलाते हैं अर्थात् निखिल ब्रह्माण्ड। इसी 'कुल' अथवा ब्रह्माण्ड का एवं ब्रह्माण्ड के आदि कारणों का जिन महा-पुरुषों ने छेदन किया है, वे ही हैं 'कुलद'। जो लोग इस 'कुल' को ब्रह्म से भिन्न नहीं समझते, उन्हें 'कौल' कहा जाता है;

ऐसे 'कुलद'-गुरु लोगों के द्वारा 'श्रीतारा-विद्या' बड़े यत्न के साथ भक्ति-रस से परिपुष्ट हुई थी। कुछ दिनों के बाद 'कौल-सम्प्रदाय' के कर्म-दोष से निस्तेज होने पर 'तन्त्र'-साधक लोग 'काम'-दास हुए। भोग-वासना के कारण उनमें कुटिलता आई। कुटिलता के फल-स्वरूप कपटता भी आई। समाज की आँखों में 'साधु' बनकर 'मद्य'-पान' एवं स्त्री-सुख हेतु वे लोग 'तन्त्र' का आश्रय लेते थे।

ऐसे नराधम तथा पापिष्ठ कौलों के आचरण से समाज कलुषित हुआ और 'तन्त्र' अश्रद्धेय हो गया। 'तन्त्र' का इसमें कोई दोष नहीं था। धर्म के बहाने 'मद्य-पान' करने की विधि 'तन्त्र' में नहीं है। 'तन्त्र' का मद्य 'आन्तर' एवं 'बाह्य'—दो प्रकार का है। आन्तर मद्य है—'तेजस्तत्त्व'। आतमा में उसकी आहुति देनी होती है। बाह्य 'मद्य' शोधन करके ही सेवन किया जा सकता है। इसके पान करने में मात्रा आदि के अनिवार्य नियम हैं। यथा—

यावन्न चलते दृष्टिः, यावन्न चलते मनः।
तावत् पानं प्रकुर्वीत, पशु-पानमतः परम्॥

अर्थात् जब तक दृष्टि विचलित न हो, मन चञ्चल न हो, तभी तक पान करना चाहिए। इससे अधिक पान करना 'पशु-पान' कहलाता है, जो शास्त्रानुमोदित नहीं है। 'पशु-पान' से पतन और नाश होता है। कहा भी है—

पशु-पान-रतो कौलोऽपि सद्यः नरकं व्रजेत्।

अर्थात् 'पशु-पान' में प्रवृत्त होनेवाला 'कौल' अर्थात् तत्त्वज्ञ साधक भी तत्काल नरक का भागी होता है।

# तारिणी-मन्त्र-रहस्य

**(गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर)**

श्री तारिणी तन्त्र में, जो कि तिब्बत के बौद्ध-लामाओं के पास पर्याप्त है और जिसका कुछ अंश भारत के जैन तान्त्रिकों के पास मिल सकता है, कहा है कि 'त्रीं' भगवती तारिणी मा का स्व-वीज है। किसी भी रीति से उस महा-शक्ति के उपासना-क्रम में इस स्व-वीज को मन्त्र से पृथक् करना उचित नहीं है।

रुद्रयामल-कथित प्रयोग में अन्य मन्त्रों की भाँति इस महा-विद्या के मन्त्र को भी शापित और कीलित कहा है। इसका शापोद्धार उस महा-विद्या के स्व-वीज में 'स'कार के संयोग से होता है तथा उत्कीलन 'प्रणव' (ॐ) और 'माया' (ह्रीं) के सम्पुट से।

उक्त प्रकार के संयोग से मन्त्र के जप-विधान में तथा मन्त्र के स्वरूप में अमुकामुक परिवर्तन मात्र होता है। मूल-मन्त्र से किसी भी वीज के पृथक् करने की आवश्यकता नहीं होती।

मूल-मन्त्र है—'ॐ त्रीं ह्रीं त्रीं हूँ फट्'।

इसमें शाप-निवारण, उत्कीलन वीजों का प्रयोग करने से मन्त्र का रूप 'ॐ ह्रीं त्रीं हूँ फट् स्त्रीं ह्रीं ॐ' हो जाता है। यह महा-विद्या का दोष-रहित मन्त्र है और महा-विद्या के श्रेष्ठ साधक इसी का जप करते हैं।

# साधना-क्रम

'कौल-कौस्तुभ' पण्डित शारदाप्रसाद मिश्र

### श्रीतारा-साधना-हेतु मुख्य साधना-स्थान

श्रीतारा की साधना हेतु **एक-लिङ्ग मन्दिर, श्मशान, शून्य-गृह या चतुष्पथ** इत्यादि मुख्य स्थान हैं तथा रात्रि में एक प्रहर बीतने के बाद तीसरे प्रहर तक का समय मुख्यतः उनकी साधना का प्रशस्त काल है।

### जल-पात्र-ग्रहण, हाथ-पैर-प्रक्षालन, शिखा-बन्धन, रक्षा-ग्रन्थि तथा सामान्यार्घ्य-पात्र-स्थापना

स्नान-सन्ध्या करने के बाद साधना-स्थान पर यदि कोई 'मण्डप'-विशेष या 'गृह' है, तो उसके द्वार-देश पर पहुँचे और यदि 'श्मशान' या 'चतुष्पथ' है, तो उस क्षेत्र के समीप पहुँचे। वहाँ—'**ॐ वज्रोदके ! हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र से जल-पात्र ग्रहण करे। '**हूं स्वाहा**'—मन्त्र से हाथ में जल लेकर, '**ॐ ह्रीं विशुद्धे सर्व-पापानि शमयाशेष-विकल्पमपनय हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र से हाथ-पैर धोए। '**ॐ हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र से 'आचमन' करे। '**ॐ मणि-धारिणि, वज्रिणि, शिखरिणि, सर्व-वशङ्करि ! हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र से 'शिखा-बन्धन' करे तथा '**ॐ मणि-धारिणि, वज्रिणि, महा-प्रतिसरे ! रक्ष रक्ष मां हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र से 'शिखा' में 'रक्षा-ग्रन्थि' लगाकर 'द्वार-देश' पर 'सामान्यार्घ्य-पात्र' की स्थापना करे।

### चतुरस्रात्मक मण्डल का निर्माण, पूजन और उस पर त्रिपदाधार की स्थापना

पहले भूमि पर सिन्दूर अथवा मात्र जल से '**विन्दु-त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्रात्मक मण्डल**' बनाए। '**आधार-शक्तये नमः**' तथा '**ॐ ह्रीं आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः**' मन्त्रों से इस 'मण्डल' का गन्धाक्षत-पुष्प द्वारा पूजन करे और उस पर 'त्रिपदाधार' स्थापित करे।

### अर्घ्य-पात्र की स्थापना, पूजन एवं नमन

'अर्घ्य-पात्र' को 'फट्' मन्त्र से प्रक्षालित कर उपर्युक्त 'त्रिपदाधार' पर स्थापित करे। '**नमः**' मन्त्र से गन्धाक्षत-पुष्प द्वारा 'अर्घ्य-पात्र' का पूजन करे। प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर 'अर्घ्य-पात्र' में तीर्थ-गन्ध-जलादि भरे और 'धेनु-मुद्रा' दिखा कर नमन करे।

### साधना-स्थल का अभ्युक्षण एवं पूजन-सहित प्रवेश

पुनः अर्घ्य-जल से '**फट्**' मन्त्र द्वारा 'द्वार-देश' अथवा 'चतुष्पथ' या 'श्मशान'-क्षेत्र—जो भी 'साधना-स्थल' हो, उसका 'अभ्युक्षण' करे अर्थात् जल छिड़के। गन्ध-पुष्पाक्षत सहित '**नमः**' मन्त्र से उसका पूजन करे। '**ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः**' मन्त्र से द्वार या स्थान के ऊर्ध्व-भाग में, '**ॐ ह्रीं वं वटुकाय नमः**' से वाम-भाग में, '**ॐ ह्रीं क्षं क्षेत्र-पालाय नमः**' मन्त्र से दक्ष-भाग में और '**ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः**' मन्त्र से अधो-भाग में क्रमशः गणेश, वटुक, क्षेत्र-पाल तथा योगिनियों का पूजन करे। फिर इसी प्रकार नाम-वीज-युक्त मन्त्रों के द्वारा गङ्गा, यमुना, लक्ष्मी तथा सरस्वती का पूजन कर 'देहली' में निम्न मन्त्र से पूजन करे—'**ॐ ह्रीं अष्ट-मातृभ्यो नमः।**' वहीं गन्ध, पुष्पादि द्वारा ब्राह्मी आदि अष्ट-मातृकाओं का

पूजन कर यत्न-पूर्वक (दक्षिणाङ्ग सङ्कोचन कर वाम-शाखा स्पर्श करते हुए) दाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर पूजा-गृह या मण्डप के भीतर प्रवेश करे ।

### भूमि-शोधन एवं आसन-शोधन

'साधना-स्थल' में प्रवेश कर—'ॐ **रक्ष-रक्ष हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र से चारों ओर जल छिड़के । '**ॐ पवित्र - वज्र - भूमे ! हूं फट् स्वाहा**'—मन्त्र से भूमि को अभिमन्त्रित करे । 'भूमि-शोधन' कर 'आसन-शोधन' करे । '**ह्सौः महा-प्रेत-पद्मासनाय नमः**' मन्त्र से आसन का संस्कार करे और उसे 'शवासन' समझता हुआ साधक सुखासन, स्वस्तिक या पद्मासन आदि किसी आसन-मुद्रा से उस पर बैठ जाय ।

### पृथ्वी-प्रार्थना

अब निम्न मन्त्र से 'पृथ्वी' की प्रार्थना करे—

**ॐ पृथ्वि ! त्वया धृता लोकाः, देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।**
**त्वं च धारय मां नित्यं, पवित्रं कुरु चासनम् ।।**

### गणेश, दुर्गा, सरस्वती, क्षेत्रपाल और गुरुदेव को नमस्कार

फिर अपने दक्ष-भाग में '**गं गणेशाय नमः, दुं दुर्गायै नमः**', वाम - भाग में '**सं सरस्वत्यै नमः, क्षं क्षेत्र-पालाय नमः**' और सम्मुख '**गुं गुरवे नमः**' मन्त्रों से क्रमशः गणेश, दुर्गा, सरस्वती, क्षेत्रपाल और गुरुदेव को नमस्कार करे ।

### सब विघ्नों का उत्सारण

तत्पश्चात् 'ॐ **सर्व-विघ्नानुत्सारय, हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र का उच्चारण करते हुए बाँएँ पैर की एड़ी से पृथ्वी पर तीन बार आघात करे । फिर चन्दन लगे हुए सुगन्धित पुष्प हाथ में लेकर '**फट्**' मन्त्रोच्चारण-पूर्वक सिर पर से घुमाए, 'ॐ' मन्त्र से उसे सूँघकर 'हौं ॐ **ते सर्वे विलयं यान्ति, ये मां हिंसन्ति हिंसकाः । मृत्यु - रोग - भयं क्लेशाः, पतन्तु रिपु - मस्तके ।। हूं फट् स्वाहा**' मन्त्र पढ़ते हुए 'नाराच-मुद्रा' दिखाए और ईशान-दिशा में उक्त पुष्प को दूर फेंक दे । तब '**अपसर्पन्तु ते भूता, ये भूता भुवि संस्थिताः । ये भूताः विघ्न-कर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।।**' मन्त्र से चारों ओर तथा ऊपर नीचे एकटक क्रूर - दृष्टि से देखते हुए 'सर्व - विघ्नों का उत्सारण' कर अपने चारों ओर अग्नि - प्राकार का चिन्तन करे और सर्वथा निर्भीक होकर साधना में प्रवृत्त हो ।

### भूत-शुद्धि

सर्व-प्रथम '**भूत-शुद्धि**' का क्रम है, जो श्री श्यामा - पद्धति के ही अनुसार है । विशेषता केवल इतनी ही है कि 'मणिपुर' (नाभि) चक्र में '**ह्रीं**' वीज को जपा-पुष्प के समान रक्त - वर्ण का चिन्तन कर तदुद्भूत अग्नि से पापों का दहन कर 'अनाहत' (हृदय) चक्र में '**स्त्रीं**' वीज का स्वर्ण - सन्निभ ध्यान कर तदुद्भूत वायु से दग्ध पाप की भस्म को बाहर फेंक दे । तदुपरान्त 'आज्ञा' (भ्रू-मध्य) चक्र में '**हूं**' वीज का कुन्देन्दु-वर्ण ध्यान करते हुए तदुद्भूत अमृत से देव-निभ पुण्य-पुरुष का निर्माण कर स्व-देह में स्थापन करे । जिस प्रकार के देव - निभ पुण्य - पुरुष को स्थापना का 'क्रम' यहाँ बताया गया है, उसका विवरण निम्न प्रकार है—

**भूत - शुद्धि विधायेत्थं, शून्यं विश्वं विचिन्तयेत् । निर्लेपं निर्मलं शुद्धं, त्वात्मानं देवता-मयम् ।**
**अन्तरिक्षे ततो ध्यायेदाकाराद् रक्त-पङ्कजम् । भूयस्तस्योपरि ध्यायेट्टाकाराच्छ्वेत - पङ्कजम् ।।**
**तस्योपरि ततो ध्यायेत्, हूँकारं नील-सन्निभम् । तस्योपरि पुनर्ध्यायेत्, कर्तृकां वीज-भूषिताम् ।।**

तस्योपरि महा-देवीं, खर्वां नील-घन-प्रभाम् । प्रत्यालीढ-पदां घोरां, मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां, व्याघ्र - चर्मावृतां कटौ । नव - यौवन-सम्पन्नां, पञ्च-मुद्रा-विभूषिताम् ।।[१]
पीनोन्नत - पयो - भारां, रक्त-वर्तुल-लोचनाम् । पिङ्गोग्रैक-जटां नील-नाग-यज्ञो-विभूषिताम् ।।
नीलोत्पल-लसन्मौलि - बद्ध - जूटां भयङ्करीम् । श्वेतास्थि-पट्टिका-युक्त-कपाल-पञ्च-शोभिताम् ।।[२]
ललाटे रक्त - नागेन, कृत - कर्णावतंसिनीम् । अति - शुभ्र - महा-नाग-कृत-हार-महोज्ज्वलाम् ।।
दूर्वा - दल - श्याम - नाग - कृत-यज्ञोपवीतिनीम् । चतुर्भुजां रक्त-मांस-खण्ड-मण्डित-तुण्टिना ।।
जटा-जूटाक्ष-सूत्रेण, शोभितां तीक्ष्ण-धारया । खड्गेन दक्षिणस्योर्ध्वे, शोभितां वीर-नादिनीम् ।।
तदधस्ताद् बीज-रूपा-कर्तृकाऽलंकृतां पराम् । वामोर्ध्व-रक्त-मालेन, विकटेश्वर - मनोहरम् ।।
दधतीं नील - पद्मां च, तदधस्तात् कपालकम् । जगतां जाडच - संयुक्तं, दधतीं कुन्द - सन्निभम् ।।
धूम्राभ-नाग-सन्दोह-कृत-केयूर-सद्-भुजाम् । सुवर्ण - वर्ण - नागेन, कङ्कणोज्ज्वल - पाणिकाम् ।।
शुभ्र - वर्ण - महा - देव-शव-हृदि समासनाम् । नियन्त्रण-भिया तद्वत्, सङ्कोच-प्रपदाञ्चलाम् ।।
शवस्य हृदयारूढा, वाम-पादा हसन्मुखीम् । कुन्दाभ - नाग - संशोभि - कटि - सूत्र-त्रिलोचनाम् ।।
ईषद् - रक्तेन नागेन, कृत - नूपुर - पल्लवाम् । सद्यश्छिन्न - गलद्-रक्त - नृ - मुण्डैरात्म-भूषणैः ।।
अन्योन्य - केश - ग्रथितैः, पाद - पद्म-प्रलम्बितैः । पञ्चाशद्भिर्महा-माला-शोभितां परमेश्वरीम् ।।
ज्वलच्चिता-मध्य-गतां, द्वीपि-चर्मोत्तरांशुकाम् । अक्षोभ्य-नाग-सम्बद्ध-जटा-जूटां वर - प्रदाम् ।।
सा वै सस्मेर - वदनां, ललज्जिह्वां वर-प्रदाम् ।।

### आचमन, हस्त-प्रक्षालन, ओष्ठ-मार्जन और दिग्-बन्धन

इस प्रकार इष्ट-देवता और आत्म-तत्त्व एवं याग-वस्तु के ध्यान-गर्भित भूत-शुद्धि करने के बाद **'ह्रीं तारायै नमः आत्म-तत्त्वाय स्वाहा, स्त्रीं एक-जटायै नमः विद्या - तत्त्वाय स्वाहा, हूं नील - सरस्वत्यै नमः शिव-तत्त्वाय स्वाहा'**—इन तीनों मन्त्रों से आचमन, **'ह्रीं'** बीज से हस्त-प्रक्षालन और **'स्त्रीं'** तथा **'हूं'** बीजों से दोनों ओष्ठों का मार्जन कर पुनः **'फट्'** मन्त्र से हस्त-शोधन कर **'हूं अस्त्राय फट्'** मन्त्र से चुटकी बजाते हुए दिग्-बन्धन कर **'ॐ हूं फट् स्वाहा'** मन्त्र से शरीर वाक्य-शोधन तथा **'रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा'** मन्त्र से आत्म-रक्षा कर कृताञ्जलि-पूर्वक पुनः वामे गुरु, दक्षिणे गणेश तथा सामने देव को नमस्कार कर पुनः प्राणायाम कर जो मन्त्र गुरु से प्राप्त हो, उसका विनियोगादि कर न्यास-जाल में प्रवृत्त हो।

### विनियोग

सार्ध-पञ्चाक्षरी का क्रम निम्न प्रकार है—**'ॐ अस्य श्रीमदुग्रतारा सार्ध-पञ्चाक्षर-मन्त्रस्य श्री अक्षोभ्य ऋषिः । वृहती छन्दः । श्रीमदुग्र-तारा देवता । ह्रीं बीजं । फट् शक्तिः । स्त्रीं कीलकं । चतुर्वर्ग-फल-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः ।**

---

१ सुमुखं चतुरस्रं च, वृत्तं गो - मुखमेव च । योनिमुद्रेति विख्याता, मुद्राः पञ्च नमस्कृतौ ।। (योनिश्च भूतिनी चैव, बीजाख्या दैत्य-धूमिनी । लेलिहा चेति संगुप्ता, पञ्च - मुद्राः प्रकीर्तिताः ।।—इन सबका विवरण आगे देखिए ।)

२ (१) ह्रां ह्रीं ह्रूं काली-कपालाय नमः, (२) स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारा-कपालाय नमः, (३) ह्रीं स्त्रीं हूं देवी-कपालाय नमः, (४) ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् सर्वा-कपालाय नमः ।

जल लेकर उक्त 'विनियोग' पढ़ते हुए पृथ्वी पर छोड़ दे। 'ऋषि' का शिर पर, 'छन्द' का मुख में, 'देवता' का हृदय में, 'वीज' का गुह्य में, 'शक्ति' का चरणों में, 'कीलक' का नाभि में तथा 'विनियोग' अर्थात् कामना का सर्वाङ्ग में न्यास करे। यथा--

### ऋष्यादि-न्यास

**श्रीअक्षोभ्य-ऋषये नमः शिरसि। वृहती-छन्दसे नमः मुखे। श्रीमदुग्र-तारायै नमः हृदि। ह्लीं वीजाय नमः गुह्ये। स्त्रीं कीलकाय नमः पादयोः। चतुर्वर्ग-फल-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।**

अब 'माया - वीज' के छहों दीर्घ - भागों (ह्लां, ह्लीं, ह्लूँ, ह्लैं, ह्लौं, ह्लः) के साथ क्रमशः अखिल, अखण्ड, ब्रह्म, विष्णु, रुद्र तथा सर्व— के बाद 'वाग् - रूपिण्यै' पद जोड़कर न्यास सम्पादित करे। यथा—

| **षडङ्ग-न्यास :** | **कर-न्यास** | **अङ्ग-न्यास** |
|---|---|---|
| ॐ ह्लां अखिल-वाग्-रूपिण्यै | अंगुष्ठाभ्यां नमः | हृदयाय नमः |
| ॐ ह्लीं अखण्ड-वाग्-रूपिण्यै | तर्जनीभ्यां नमः | शिरसे स्वाहा |
| ॐ ह्लूँ ब्रह्म-वाग्-रूपिण्यै | मध्यमाभ्यां नमः | शिखायै वषट् |
| ॐ ह्लैं विष्णु-वाग्-रूपिण्यै | अनामिकाभ्यां नमः | कवचाय हुम् |
| ॐ ह्लौं रुद्र-वाग्-रूपिण्यै | कनिष्ठिकाभ्यां नमः | नेत्र-त्रयाय वौषट् |
| ॐ ह्लः सर्व-वाग्-रूपिण्यै | करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः | अस्त्राय फट् |

### भैरवत्व-प्राप्ति हेतु अन्य न्यास

तत्पश्चात् मातृकादि सब न्यास-जाल 'श्रीश्यामा-पद्धति' के समान ही सम्पादित करे। मुख, नासिका, आँख, कान, नाभि, वक्ष, उदर तथा भुजाओं पर वैरोचन, असिताभ, पद्म-नाभ, शङ्ख, पाण्डुर, अनामका, मामका, तारकादि का न्यास करे, जिससे साधक भैरवत्व को प्राप्त करता है।

इसके बाद **'ह्लां एक-जटायै, ह्लीं तारिण्यै, ह्लूँ वज्रोदकायै, ह्लैं उग्र-तारायै, ह्लौं महा-प्रतिसरायै, ह्लः पिङ्गोग्रैक-जटायै'** से पुनः हृदयादि-न्यास कर मूल-मन्त्र से नौ, सात या कम-से-कम पाँच बार 'व्यापक न्यास' करे। पाँच बार से कम कदापि न करे। यही क्रम प्रशस्त है, अन्य नहीं।

इन सबके बाद षोढा, मन्त्र - षोढा, गुह्य-षोढादि न्यासों का क्रम है, जो 'श्रीश्यामा - पद्धति' के ही समान हैं, किन्तु पूर्णाभिषिक्त साधक ही इन न्यासों का प्रयोग कर सकते हैं, अन्यथा अनिष्ट अवश्यम्भावी है।

### सामान्यार्घ्य तथा विशेषार्घ्य पात्रों की संक्षिप्त स्थापन-विधि

पूजा-गृह या यज्ञ-स्थल में पुनः 'सामान्यार्घ्य' तथा 'विशेषार्घ्यादि' पात्रों की सविधि स्थापना करे। अपने दक्षिण ओर भूमि पर 'विन्दु-त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्रात्मक' मण्डल सिन्दूरादि पदार्थों से बनाकर **'ह्लीं आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः'** मन्त्र से पूजन कर **'नमः'** मन्त्र से प्रक्षालित 'त्रिपदाधार' उक्त मण्डल पर स्थापित कर **'ह्लीं रं वह्नि-मण्डलाय धर्म-प्रद-दश-कलात्मने श्रीसामान्यार्घ्य-पात्राधाराय नमः'** मन्त्र से आधार - पूजन कर **'फट्'** मन्त्र से प्रक्षालित शङ्ख या नारिकेलादि पात्र उक्त त्रिपदाधार पर

स्थापित कर **'स्त्रीं अं अर्क-मण्डलायार्थ-प्रद-द्वादश-कलात्मने श्रीसामान्यार्घ्य-पात्राय नमः'** मन्त्र से अर्घ्य-पात्र का पूजन कर मूल-मन्त्र जपते हुए उसमें तीर्थादि जल, गन्ध-पुष्पादि डालकर **'हूं ॐ सोम-मण्डलाय काम-प्रद-षोडश-कलात्मने श्रीअर्घ्य-पात्रामृताय नमः'** मन्त्र से पात्रस्थ द्रव्य का पूजन कर अंकुश-मुद्रा द्वारा **'ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ! नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु'** मन्त्र से तीर्थावाहन तथा आकर्षण कर गुरूपदिष्ट आनन्द-भैरव तथा आनन्द-भैरवी के मन्त्रों से अथवा **'ह्सौं वरुणाय नमः** और **'स्हौं वारुणो - देव्यै नमः'** मन्त्रों को तीन - तीन बार कह कर कर पात्रस्थ द्रव्य को अभिमन्त्रित करके **'ॐ वं अमृते अमृतोद्भवे अमृत - वर्षिणि ! अमृतमाकर्षयाकर्षय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा'** पढ़कर **'वं'** वीज उच्चारण-पूर्वक धेनु-मुद्रा दिखाकर योनि-मुद्रा दिखाए । फिर मत्स्य-मुद्रा से द्रव्याच्छादन कर मूल-मन्त्र दश बार पढ़े ।

यह संक्षिप्त साधारण 'सामान्यार्घ्य'-विधि है । इसके जल से **'ॐ पुष्प-केतु-राजार्हते पुष्पे पुष्पे महा-पुष्पे सु-पुष्पे पुष्प-सम्भवे पुष्प-चयावकीर्णे हूं फट् स्वाहा'** एवं **'ॐ शताभिषेके हूं फट् स्वाहा'** मन्त्र पढ़ते हुए पुष्पों का प्रोक्षण कर उन्हें शुद्ध कर ले ।

तदुपरान्त देवता के सम्मुख तथा अपने और देवता के मध्य भाग में 'विन्दु - त्रिकोण - षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रात्मक' मण्डल बनाए । मण्डल बनाने से पहले **'ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा'** मन्त्र से जल छिड़क कर भूमि-शोधन कर **'ॐ पवित्र वज्र-भूमे ! हूं फट् स्वाहा'** मन्त्र से भूमि को अभिमन्त्रित कर **'ॐ आः सुरेखे वज्र-रेखे हूं फट् स्वाहा'** मन्त्रोच्चारण-पूर्वक उक्त मण्डल को सिन्दूर - रक्त - गन्धादि द्रव्यों से रच कर **'ॐ ह्रीं व्यापक-मण्डलाय नमः'** मन्त्र से उसका पूजन कर **'ॐ आधार-शक्त्यै नमः, ह्रीं आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः, कूं कूर्माय नमः, शें शेषाय नमः'** मन्त्रों से आधार - शक्ति, कूर्म तथा शेषादि का पूजन उक्त मण्डल पर करके सामान्यार्घ्य-वत् आधार-स्थापन तथा पूजन कर शङ्ख या नृ-कपाल - पात्र **'हूं फट्'** मन्त्र से प्रक्षालित कर **'स्त्रीं'** वीजोच्चारण-पूर्वक उसे उक्ताधार पर स्थापित कर **'ह्रां ह्रीं ह्रूं काली-कपालाय नमः, स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारा-कपालाय नमः, हां हीं हूं नीला-कपालाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हूं सर्वा-कपालाय नमः, सर्वोद्धाराय सर्वोद्भवाय सर्व-शुद्धि-मयाय सर्वासुर-रुधिरारुणाय सर्वाय सुरा - भाजनाय देवी - कपालाय नमः'** मन्त्रों से कपाल-पात्र का पूजन कर पुनः सामान्यार्घ्य - वत् अर्क-मण्डल का पूजन उसी पात्र में कर पुनः मूलोच्चारण-पूर्वक सुधा-बुद्धचा तीर्थ-गन्धाक्षतादि उक्त पात्र में प्रक्षेप कर त्रिखण्डा-मुद्रा दिखाए ।

फिर सामान्यार्घ्य - वत् चन्द्र - मण्डल का पूजन कर **'ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् ह्सौं हूं'** मन्त्र से आठ बार उस पात्रस्थ अमृत को अभिमन्त्रित कर **'ह्रीं'** वीज उच्चारण - पूर्वक किञ्चिज्जल पात्र में छोड़ दे । शङ्ख और योनि-मुद्राएँ दिखाकर उक्त द्रव्य में 'वृत्त-षट्-कोणाष्ट-दल-मय' पीठ का चिन्तन कर श्री देवी का ध्यान उसी पीठ में विधि-वत् करके सब उँगलियों द्वारा उस पात्रस्थ अमृत से मूलोच्चारण-पूर्वक **'ऐं हूं ह्सौं नमः'** तथा **'ऐं हूं स्हौं नमः'** मन्त्रों से चार - चार बार आनन्द - भैरव तथा आनन्द-भैरवी का तर्पण करे । पात्र को अपने स्थान से अन्तरित न होने दे, यत्न-पूर्वक उसकी रक्षा करे । किसी प्रकार मलिन न होने दे । उसे देव-मय ध्यान करे । पात्रस्थ द्रव्य से अपने आपको तथा समस्त पूजा-सामग्री का प्रोक्षण और अभ्युक्षण कर शुद्ध करे । अन्त में योनि-मुद्रा दिखाकर प्रणाम करे । यह साधारण संक्षिप्त 'विशेषार्घ्य-स्थापन'-विधि है ।

पूजा प्रारम्भ करने से पहले षोडश-वर्षीया, मदोन्मत्ता, सुवेशी, रसाभिलाषिणी, सर्वाभरण-भूषिता, सर्व-शृङ्गार-युक्ता, दीक्षिता या पूर्णाभिषिक्ता स्व-शक्ति तदाभावे तादृशी अन्य शक्ति को, जिसे देव तथा साधक पर पूर्ण प्रेम तथा श्रद्धा हो, वाम भाग में स्थापित कर साधनार्चन में प्रवृत्त हो। अति उत्तम हो, यदि विशेषार्घ्य-स्थापन उसी शक्ति द्वारा हो। अदीक्षिता होने पर साधक स्वयं उसको विधि-वत् शोधन कर दीक्षित कर ले तथा उसकी देह में सब न्यास करे।

पूजन से प्रथम ही श्री जगज्जननी के पूजनार्थ सर्व - द्रव्य उपस्थित होने चाहिए। श्रीजगत्-तारिणी द्रव्यानुरक्ता हैं। अतः उनका पूजन सर्व-द्रव्यों से होना श्रेयस्कर है। स्वयं भी कारणादि से तृप्त हो और श्रीमाता को भी सब द्रव्य निवेदन कर भोग तथा मोक्ष—दोनों का भागी बने।

कुलामृतादि सब द्रव्यों के बिना श्रीजगत्-तारिणी श्रीनील-सरस्वती का जप - पूजन - ध्यानादि सभी वर्जित है। इसी का ध्यान न रखने से श्रीवशिष्ठदेव को देश-देशान्तर में भटकना पड़ा और इन्हीं से युक्त होने पर वे अलभ्य सिद्धि को प्राप्त कर सके।

## पीठ-न्यास एवं पीठ-पूजन

पूर्वोक्त प्रकार से शक्ति को आसनासीन कर उसके शरीर में सब देव-न्यास कर स्वयं भी न्यास-जाल समापन कर स्त्री-वेश-धारी, सिन्दूराङ्कित-भाल, ताम्बूल-पूरित मुख, सर्व-शृङ्गार-युक्त हो, स्व-देह में पीठ-न्यास करे। आधार-शक्त्यादि, धर्माधर्मादि, पाद-गात्र-चतुष्टय तक प्रारम्भिक क्रम श्रीश्यामा-वत् ही सम्पादन करे। तब हृत्-पद्म में सूर्य-चन्द्राग्नि तथा वराभय-धारिणी नव-पीठ-शक्तियों (लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, कान्ति) का पद्म-केसरों में तथा मध्य में शव - रूप श्रीअक्षोभ्य-वक्षस्था स्वयं श्रीमन्नील-सरस्वती तारिणी का सविधि ध्यान तथा मानसिक पूजन कर **'ॐ ऐं हूं परायै अपरायै परापरायै ह्सौः सदाशिव-महा-प्रेत-पद्मासनाय नमः'** मन्त्र से पीठ-पूजन कर **'मेधा प्रज्ञा विद्या धी धृति स्मृति बुद्धि विद्येश्वर्यादि'** शक्तियों का भी मध्य में इष्ट - देव - वत् ही ध्यान - पूजन कर कृत-कार्य हो।

## यन्त्र-राज का निर्माण एवं पूजन

पूर्वोक्त प्रकार न्यास-जालोपरान्त ताम्र-पत्र, कपाल, श्मशान-काष्ठ अथवा शनि - भौम के दिन मृत पुरुष के विहित शव पर या इनके अभाव में स्वर्ण, रौप्य या अष्ट-धातु-निर्मित पीठ पर चक्र-राज का निर्माण कर विधि-वत् पूजन करे। स्वयम्भू-कुसुम, कुण्ड-गोलोत्थ द्रव्य, रोचना, कुमकुम, अगर, कस्तूरी तथा चन्दन-द्वय-युक्ताष्ट-गन्ध द्वारा **'ॐ आः सुरेखे वज्र-रेखे हूं फट् स्वाहा'** मन्त्रोच्चारण-पूर्वक उक्त किसी पीठ पर यन्त्र-राज का निर्माण करे।

श्रीद्वितीया माता भगवती तारा के पूजा-यन्त्र कई प्रकार के हैं परन्तु मुख्य दो ही हैं—१ विन्दु-त्रिकोणाष्ट-दल-वज्राङ्कित भूपुर, २ विन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-त्रय-चतुरस्र, फिर वृत्त और अष्ट-दल, तब तीन वृत्त, फिर त्रिशूलाङ्कित भूपुर-त्रय। इन दो में से कोई भी यन्त्र बना ले। अन्य यन्त्रों के उद्धार भी साधकों के ज्ञानार्थ नीचे लिखे जाते हैं। इनमें ऊपर के दोनों यन्त्र भी सम्मिलित हैं—

**१ विन्दु-त्रिकोणाष्ट-दलं, भूपुरं वज्र-चिह्नितम्।**

**२ विन्दु-त्रिकोण-वृत्तं च, पद्म-भू-गृह-भूषितम्। यन्त्रं प्रोक्तं महा-प्राज्ञ! भूपुर-द्वय-संयुतम्॥**

**३ विन्दु-त्रिकोण-षट्-कोणं, वृत्त-त्रयमनन्तरम्। चतुरस्रं ततो वृत्तं, दलाष्टकं ततोपरि॥**

**वृत्त-त्रयं समालिख्य, भूपुर-त्रितयं ततः। त्रिशूलमङ्कितं यन्त्रं, श्रीमहा-तारिणी-मनोः॥**

४ विन्दु-त्रिकोण-षट्-कोणमष्ट-दल-विभूषितम् । षोडशारं ततः पद्मं, चतुः-षष्टि-दलं तथा ।।
भूपुर-त्रय-संयुक्तं, यन्त्रं श्रीतारिणी-मनोः ।

५ षट्-कोणान्तर्गतं पद्मं, भू-बिम्ब-द्वितयं पुनः । तन्मध्ये विलिखेन्मन्त्री, तारा-प्रणवमेव हि ।।

अथवा—६ माया पूर्व-दले चैव, द्वितयं दक्षिणे लिखेत् । अथोत्तरे पश्चिमे च, हूं फट् तारं च मध्यतः ।।

७ स-योनि गोमयेनाष्ट-पत्रमब्ज - सुशोभनम् । भूपुरं वसु - वज्राढ्यं, यन्त्रमेव जलात्मकम् ।।
मायां पूर्व-दले न्यस्य, याम्ये चैव द्वितीयकम् । तथोत्तरे पश्चिमे च, फट्-कारै विलिखेत् ततः ।।
मध्ये तारं लिखित्वा तु……
अत्रास्त्र-वीज-लिखने मत-भेदोऽस्ति––कुलेश्वर-मतो प्रोक्तं, फोत्तर-पश्चिमे तु ठः । फ-पश्चिमे ठोत्तरे च, विकराल-मतौ स्मृतम् ।।

८ व्योमेन्दौ रसनार्ण-कर्णिकमचाद्वन्द्वै स्फुरत् शेखरम् । वर्गोल्लासि वसु - द्वन्द्वं, वसुमती - गेहेन सम्वेष्ठितम् ।। ताराधीश्वर-चारि-वर्णः विलसद्-दिक्कोण-संशोभितम् । यन्त्रं नील-मनोर्निगदितं सर्वार्थ-सिद्धि-प्रदम् ।।

मत-भेद-वश अन्य यन्त्र भी हैं, परन्तु जिस किसी के 'कल्प' और 'क्रम' में जो भी यन्त्र है, उसके लिए वही प्रशस्त है ।

'मन्त्र' और 'यन्त्र' का संयोग इस प्रकार है कि प्रणव 'ॐ' ब्रह्म-स्वरूप है । 'ह' प्रकाश-स्वरूप, 'र' तेज-स्वरूप, 'ई' तत्त्व-स्वरूप—सब मिलकर '**ह्रीं**' वीज सर्व-तत्त्व-प्रकाशक है । '**स**' शील-स्वरूप, '**त**' सर्व-पापघ्न, 'रेफ'––'**र**' तत्त्व-प्रकाशक, '**ई**' शक्ति-वीज मिलने से कुल-वीज '**स्त्रीं**' शब्द-ब्रह्म का प्रकाशक है । '**हूं**' वीज प्रबोध-स्वरूप है तथा अस्त्र-वीज '**फट्**' जाड्य-विनाशक है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण मन्त्र शब्द-ब्रह्म का प्रबोध-स्वरूप, जाड्य - नाशक, देव-मय है और उसका निवास-स्थान यन्त्रस्थ 'विन्दु' ही ब्रह्म है ।

इसी कारण सब साधनाओं का मूल आधार 'यन्त्र' ही है । अन्तर्यजन में यह 'यन्त्र' देहस्थ है तथा बाह्य में स्वर्णादि पत्रों पर अङ्कित है । बाह्याभ्यन्तर दोनों ही पूजाओं में यही मुख्याधार है । अतः बड़ी सावधानी से इसे निर्माण कर पूजन करे ।

### बाह्य-पूजा

'**अन्तर्यजन**' में देहस्थ पीठ का न्यास जिस प्रकार आधार-शक्त्यादि—धर्माधर्म - पाद - चतुष्टय तक पहले कहा है, उसी प्रकार 'बाह्य - पूजा' में स्वर्ण - पत्रादि पत्रों पर अङ्कित 'यन्त्र' पर भी वे सब न्यास करके 'चतुरस्र' में 'श्मशान' की भावना कर बहु-मांसास्थिभिर्मोदमान 'शिवाओं' को उसमें क्रीड़ा करते हुए चिन्तन करे । मध्य में 'कल्प-वृक्ष', उसके मूल-प्रदेश में नाना-मणि - रचित मणि - मय 'प्रासाद' में नानालङ्कार-भूषित देव-गण तथा मुनि-समूह का चिन्तन कर 'विन्दु' - भाग में शव - मुण्ड - चिताङ्गारास्थि-भूषित शव-रूप 'शिव' पर विराजमाना मुण्ड-माल-भूषिता श्रीमदुग्र-तारा महा-विद्या का चिन्तन करते हुए '**ॐ ऐं हूं परापरायै ह्सौः सदा-शिव-महाप्रेतासनाय नमः**' मन्त्र से पीठ - पूजा कर 'मेधा, प्रज्ञा आदि' पीठ-शक्तियों का पूजन स्व-नामाद्य-वीज-सहित नमोऽन्त मन्त्र से मध्य में तथा उसी प्रकार वराभय-धारिणी 'लक्ष्मी-सरस्वत्यादि ' का भी पद्म-केसरों में करे तथा अक्षोभ्य-सहित श्रीमदुग्र - तारा देवता का पूजन मध्य में करे ।

तदुपरान्त भूपुर की चारों दिशाओं में (पूर्वे)--**पाशांकुशैः त्रिशूलं च, कपालं दधतं करैः। अलङ्कार-समोपेतं, 'गणेशं' प्राक् समर्चयेत्--'ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः'**। (दक्षिणे)--**कपाल-शूल-हस्ताभ्यां, दधतं सर्प-भूषणम्। स्व-यूथ-वेष्ठितं रम्यं, 'वटुकं' दक्षिणेऽर्चयेत्--'ॐ ह्रीं वं वटुकाय नमः।'** (पश्चिमे)--**डमर्वसि त्रिशूलं च, कपालं दधतः करैः। कृष्णं दिगम्बरं क्रूरं, 'क्षेत्रपं' पश्चिमे यजेत्--'ॐ ह्रीं क्षं क्षेत्र-पालाय नमः।'** (उत्तरे)--**डमरुं पाश-लिङ्गं च, कपालं दधतीं करैः। रक्त-माल्यां रक्त-वस्त्रां, 'योगिनो' मुत्तरे यजेत्--'ॐ ह्रीं यां योगिन्यै नमः'।**

इस प्रकार पीठ, पीठ-शक्ति का तथा पीठ-देवों का विधि - वत् पूजन कर **'हूं'** वीज द्वारा 'मूला-धारस्था' कुण्डलिनी का उत्थापन करे। फिर उसे सुषुम्णा द्वारा **'ह्रीं'** वीज को सूर्य-कोटि-सम-प्रभा ध्यान करते हुए 'स्वाधिष्ठान'-चक्र में **'स्त्रीं'** वीज को पीत-वर्ण चिन्तन करते हुए ले जाकर तथा 'मणिपूर'-चक्र में **'हूं'** वीज को नील-वर्ण ध्यान-पूर्वक कुण्डलिनी को प्रवेश कराए।

तदनन्तर 'अनाहत'-चक्र में **'फट्'** वीज को कालाग्नि-सदृश ध्यान करते हुए कुण्डलिनी के मुख में अनाहतस्थ श्रीदेवता-मूर्ति को प्रदोप-कलिकाकार चिन्तन करते हुए **'सोऽहं'**-मन्त्र द्वारा प्रवेश कराकर उस देवता-जीव-मूर्ति को 'विशुद्ध' एवं 'आज्ञा'-चक्रों में से उसी प्रकार **'हूं'** वीज द्वारा ले जाकर 'मूलाधार' से 'ब्रह्म-रन्ध्र' तक सूर्य-कोटि-प्रतीकाश ध्यान करते हुए सहस्रारस्थ परम शिव (श्रीब्रह्म-देव) से मिलाए।

वहाँ चन्द्र-मण्डलस्थ अमृत से सन्तुष्टा कुण्डलिनी को लौटाकर उस देवता-मय-जीव - मूर्ति को कुण्डलिनी-मुख से निकालकर 'काम-कला' तथा देवता-ध्यान करते हुए 'कर-कच्छप' मुद्रिका में लिए हुए पुष्पों में देवता-प्रवेश की भावना करते हुए उन पुष्पों को यन्त्र पर चढ़ाकर आवाहनीय तथा अन्य मुद्राएँ दिखाकर विधि-वत् पूजन प्रारम्भ करे। भगवती तारा का ध्यान--

**प्रत्यालीढ-पदां घोरां, मुण्ड-माला-विभूषिताम्। खर्वां लम्बोदरीं भीमां, व्याघ्र-चर्मावृतां कटौ॥**
**नव - यौवन - सम्पन्नां, पञ्च-मुद्रा-विभूषिताम्॥ चतुर्भुजां ललज्जिह्वां, महा-भीमां वर-प्रदाम्॥**
**खड्ग-गदा-धरां सव्ये, वामे मुण्डोत्पलान्विताम्। पिङ्गोग्रैक-जटां ध्याये, मालावक्षोभ्य-भूषिताम्॥**
**बालार्क-मण्डलाभासां, लोचन-त्रय-भूषिताम्॥ प्रज्वलत्-पितृ-भू-मध्ये, गतां दंष्ट्रा-करालिनीम्॥**
**सा वै सस्मेर-वदनां, सर्वालङ्कार-भूषिताम्। विश्व-व्यापक-तोयान्तः, श्वेत-पद्मोपरि-स्थिताम्॥**

काम-कला का ध्यान—

**मुखं विन्दु - वदाकारं, तदधः कूर्च-युग्मकम्। सर्वं - विद्यामृतापूर्णं, सर्व-गो-विभव-प्रदम्॥**
**सर्वार्थ - साधकं देवं, सर्व-वश्य-प्रवर्त्तकम्। तदधः सपरार्द्धं च, परिष्कृत्य सु - मण्डलम्॥**
**सर्व - देवादि - भूतं च, सर्व - देव-नमस्कृतम्। सर्वाह्लादन-सम्पूर्णं, सर्व-रञ्जन-कारकम्॥**

जिस प्रकार विना प्रकृति (शक्ति) के संसार में कुछ नहीं, वैसे ही विना पुरुष (शिव) के विद्या सफला नहीं होती। 'शिव' और 'शक्ति' दोनों के एकत्र पूजन के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। श्री जगत् - तारिणी के साथ - साथ 'श्रीअक्षोभ्य' भी सर्वदा पूज्य हैं। उनका ध्यान निम्न प्रकार है—

**सहस्रादित्य-सङ्काशं, नाग-रूप-धरं शिवम्। विद्युत्-कोटि-समं वक्त्रं, वह्नि - भास्वर-लोचनम्॥**
**सार्ध - त्रिवलयोपेतं, जटा-कोटयुग्र - संयुतम्। महा - लावण्य - संयुक्तं, सुरासुर - नमस्कृतम्॥**
**सूर्य-विद्युत्-समं भास्वन्, महा-मणि-शिरोपरि। एतद् - रूपं महा - कायं, देवैरपि सु - पूजितम्॥**

जो साधक-प्रवर इस प्रकार काम-कला-युक्त ध्यान में सदैव सर्वत्र ही मग्न रहने का अभ्यास कर लेते हैं, उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।

# श्रीभक्ति-कुल-सर्वस्व श्रीतारा-सहस्रनाम स्तोत्रं

[प्रस्तुत स्तोत्र 'श्रीतारा-भक्ति-सुधार्णव' से यहाँ उद्धृत है। इसका केवल पाठ करने से ही भगवती तारा की कृपा से पाठ-कर्ता का सब प्रकार से कल्याण होता है। मां तारा के अन्य आवश्यक स्तोत्र कृपया 'श्रीतारा-स्तव-मञ्जरी' में देखें—सं०]

कैलाश-नगरे देवं, महा-देवं महेश्वरं। भवानी रहसि प्रोत्या पप्रच्छ वर-दायकम् ॥

**॥ देव्युवाच ॥**

कथमीशान, सर्वज्ञ ! लभन्ते शक्तिमुत्तमाम्। साधकाः सर्वदा येन, तन्मे कथय सु-प्रभो ! ॥

**॥ ईश्वर उवाच ॥**

विना पूजां विना ध्यानं, विना जपं विना बलिं। लभन्ते येन कल्याणि ! तन्मे निगदितं श्रृणु ॥
नाम्नां सहस्रं तारायाः, कथयिष्याम्यशेषतः। श्रृणु देवि! सदा भक्त्या भक्तानां परमं हितं ॥
विना पूजोपचारेण, विना जपेन यत् फलं। तत् फलं सकलं देवि ! कथयिष्यामि तच्छृणु ॥

**विनियोग—ॐ अस्याः श्रीतारा-देव्या भक्ति-कुल-सर्वस्व-नाम-स्तोत्रस्य, श्रीअक्षोभ्य ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीतारा-देवता सर्व-कामार्थे जपे विनियोगः।**

**ऋष्यादि-न्यास—श्री अक्षोभ्य-ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे। श्रीतारा-देवतायै नमः हृदि। सर्व-कामार्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।**

ताराराात्रिर्महा-रात्रिः कालरात्रिः कपालिनी। कालिका कामदा माया महा-माया महोत्सवा ॥
महा-दान-रता यज्ञा, यज्ञोत्सव-विभूषिता। चन्द्र-वक्त्रा चकोराक्षी, चारु-नेत्रा सु-लोचना ॥
त्रिनेत्रा पद्म-पत्राक्षी, कुरङ्गाक्षी मनोहरा। ब्राह्मी नारायणी ज्योत्स्ना, चारु-केशी सुलोचना ॥
वाराही वारुणी विद्या, महा-विद्या महेश्वरी। पिङ्गा कुञ्चित-केशी च, महा-यज्ञ-स्वरूपिणी ॥
गौरी चम्पक-वर्णा च, कृशाङ्गी कुल-पूजिता। सर्वानन्द-स्वरूपा च, सर्व-सङ्कट-तारिणी ॥
नित्या नित्य-मयी नन्दा, भद्रा नील-सरस्वती। गायत्री सु-चरित्रा च, कौल-व्रत-परायणा ॥
हिरण्य-गर्भा भू-गर्भा, विश्व-गर्भा यशस्विनी। हिम-वत् तनया दिव्या, दिव्याम्बर-विभूषणा ॥
जगन्माता जगद्धात्री, जगतामुपकारिणी। सैन्द्री सौम्या तथा याम्या, वारुणी वायवी तथा ॥
आग्नेयी नैर्ऋती चैव, ऐशानी चण्डिकाऽम्बिका। सु-मेरु-तनया वन्द्या, सर्वेषामुपकारिणी ॥
ललज्जिह्वा सरोजाक्षी, मुण्ड-स्रज-विभूषणा। सर्वानन्द-मयी सर्वा, सर्वानन्द-स्वरूपिणी ॥
धृतिर्मेधा तथा लक्ष्मीः श्रद्धा पन्नग-शायिनी। रुक्मिणी जानकी दुर्गा, सत्या सत्य-वती रतिः ॥
कामाख्या मोक्षदानन्दा, नारसिंही सरस्वती। महा-देव-रता चण्डी, चण्डदोर्दण्ड-खण्डिनी ॥

दीर्घ-केशी सु-केशी च, पिङ्गकेशी महत्-कचा। भवानी भव-पत्नी च, भव-भीति-हरा शची ।।
पौरन्दरी तथा विष्णोर्जाया महेश्वरी परा। सर्वेषां जननी नित्या, चार्वङ्गी दैत्य-नाशिनी ।।
घोर-रूपा महेशानि ! कामिनी वर-वर्णिनी। महा-विद्या महा-माया, महा-मेधा महोत्सवा ।।
वि-रूपा विश्व-रूपा च, मृडानी मृड-वल्लभा । महा-पुण्य-प्रदा भीमा, मधु-कैटभ-नाशिनी ।।
कोटि-चन्द्र-प्रतीकाशा, शत-सूर्य-सम-प्रभा । जह्नु-कन्या मनोज्ञा च, पार्वती हर-वल्लभा ।।
काम-रूपा महेशानी, नित्योत्साहा मनस्विनी। वैकुण्ठ-नाथ-पत्नी च, तथा शङ्कर-वल्लभा ।।
काश्यपी कमला कृष्णा, कञ्ज-पत्रायतेक्षणा । माहेश्वरी वृषारूढा, पूर्ण-चन्द्र-निभानना ।।
मान्या मानवती धन्या, कन्या हिम-गिरेस्तथा । अपर्णा पद्म-पत्राक्षी, नाग-यज्ञोपवीतिनी ।।
महा-शङ्ख-धरा कान्ता, कमनीया नगात्मजा। ब्रह्माणी वैष्णवी शम्भोर्जाया गङ्गा-जलेश्वरी।।
भागीरथी मनो-बुद्धि-नित्यानन्द-मयी सदा । हर-प्रिया गिरि-सुता, हर-पत्नी तपस्विनी ।।
महा-व्याधि-हरा देवी, शुम्भासुर-निषूदिनी । महा-पुण्य-प्रदा भीमा, मधु-कैटभ-नाशिनी ।।
शङ्खिनी चक्रिणी धात्री, हस्ते पुस्तक-धारिणी। चामुण्डा चपला तुङ्गा, भद्रा दैत्य-निकृन्तनी।।
शान्तिर्निद्रा महा-निद्रा, गुह्य-निद्रा च रेणुका । कौमारी कुलजा कुन्ती, कौल-व्रत-परायणा ।।
नव-दुर्गा सदाचारा, द्रौपदी द्रुपदात्मजा। सृष्टिः सर्वाद्य-कालीना, निशुम्भ-प्राण-नाशिनी ।।
पद्मिनी वसुधा पृथ्वी, रोहिणी विंध्यवासिनी। शिवा शक्तिर्महा-शक्तिः, शाङ्करी शक्तिवल्लभा
दैत्य-प्राण-हरा दात्री, दया दामोदर-प्रिया । क्षान्तिः क्षेमङ्करी बुद्धिर्बौद्धाचार-परायणा ।।
श्रीविद्या-भैरवी भव्या, भारती भयनाशिनी। तापसी तारिणी तीक्ष्णा, तीक्ष्ण-दैत्य-विनाशिनी
दात्री दान-परा काली, दुर्गा दैत्य-विनाशिनी । पद्मा पद्मावती हृष्टा, तुष्टा पुष्टा तथोर्वशी ।।
वज्रिणी वज्र-हस्ता च, तथा नारायणी शिवा। खण्डिनी खड्ग-हस्ता च, कर्तृ-खर्पर-धारिणी
देवाङ्गना देव-मान्या, देव-कन्या पुलोमजा । सुखिनी सुख-दात्री च, सर्व-सौख्य-विवर्धिनी ।।
शीला शीलवती सूक्ष्मा, सूक्ष्माकारा वर-प्रदा । वरेण्या वरदा वाणी, ज्ञानिनी ज्ञानदाऽमला।।
उग्र-काली महा-काली, भद्र-काली च दक्षिणा। भृगु-वंश-समुद्भूता, भार्गवी भृगु-वल्लभा ।।
शूलिनी शूल-हस्ता च, मयूर-वर-वाहना । महा-मांस-रता रक्ता, रक्त-खर्पर-धारिणी ।।
रक्ताम्बर-धरा रामा, रमणी सुर-नायिका । परमानन्ददा ज्येष्ठा, योगिनी-गण-सेविता ।।
अम्बा जाम्बवती सत्या, सत्यभामा नगात्मजा। रौद्री रौद्रस्वना रौद्रा, रौद्र-दैत्य-विनाशिनी ।।
कुमारी कौशिकी विद्या, काल-दैत्य-विनाशिनी। शम्भुपत्नी शम्भु-रता, शम्भु-जाया महोदरी।।
शिव-पत्नी शिव-रता, शिव-जायाम्बिका तथा। हर-पत्नी हर-रता, हर-जाया च शूलिनी ।।

मदनान्तक-कान्ता च, मदनान्तक-वल्लभा। गिरिजा गिरि-कन्या च, गिरीशस्य च वल्लभा ।।
भूत-भव्या भवा पुष्टा, पावनी परिपालिनी। अदृश्याऽव्यक्त-रूपा च, इष्टा स्वेष्ट-प्रवर्धिनी।।
अच्युता प्रच्युता प्राणा, प्राणदा वासवेश्वरी। अपांनिधि-समुद्भूता, धारिणी च प्रतिष्ठिता ।।
उद्भवा क्षोभणा क्षेमा, श्रीगर्भा परमेश्वरी। कराला पुष्ट-देहा च, कारिणी कञ्ज-लोचना ।।
शरण्या कमला प्रीता, विमलानन्द-वर्धिनी। कपर्दिनी कल्पनाभा, सुमनानन्द-वर्धिनी ।।
उदीर्ण-भूषणा भव्या, सुर-सेना सुरेश्वरी। श्रीमती शिशिरानन्दा, शिशिराचल-कन्यका ।।
सुर-मान्या सुर-श्रेष्ठा ज्येष्ठा प्राणेश्वरी स्थिरा। तमोघ्नी ध्वान्त-संहन्त्री प्रयतात्मा पवित्रता
प्रद्योतिनी रथारूढा, सर्व-लोक-प्रकाशिनी। मेधाविनी महा-वीर्या, हंसी संसार-तारिणी ।।
प्रणत-प्राणिनामार्त्ति-हारिणी दैत्य-नाशिनी। डाकिनी शाकिनी शोला, वर-खट्वाङ्ग-धारिणी
कौमुदी कुमुदा कुन्दा, कौलिका कुलजात्मजा। गर्विता गुण-सम्पन्ना, नगजा खग-वाहिनी ।।
चन्द्रानना महोग्रा च, चारु-मूर्धज-शोभिता। मनोज्ञा माधवी मान्या, माननीया महद्-गुणा ।।
ज्येष्ठा मघा च पुष्या च, धनिष्ठा पूर्वफाल्गुनी। रक्त-वीजादि-हन्त्री च, रक्तबीज-विनाशिनी ।।
चण्ड-मुण्डारि-हन्त्री च, चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी। कर्त्री हर्त्री सु-कर्त्री च विमलामल-वाहिनी ।।
निर्मला भास्करी भीमा, महिषासुर-घातिनी। कालिन्दी यमुना वृद्धा, युवती बालिका तथा ।।
कौशल्या कौमुदी माद्री, कन्धती चाप्यरुन्धती। पुरारि-गृहिणी पूर्णा, पूर्ण-रूपा यशस्विनी ।।
सम्पूर्ण-चन्द्र-वदना, बाल-चन्द्र-सम-प्रभा। रेवती रमणी चित्रा, विचित्राम्बर-भूषणा ।।
वीणा वीणावती विद्या, यशोदा च यशस्विनी। नव-पुष्प-समुद्भूता, नव-पुष्पासवोत्सुका ।।
नव-पुष्प-स्रजा माला, माल्य-भूषण-शोभिता। नव-पुष्प-सम-प्राणा, नव-पुष्प-समुत्सुका ।।
नव-पुष्पात्मिका पुष्पा, पुष्प-स्रज-विभूषणा। नव-पुष्प-गुणोपेता, नव-पुष्पोप-शोभिता ।।
नव-पुष्प-प्रिया प्रीता, प्रेम-मण्डल-मध्यगा। कुल-शास्त्र-प्रदीप्ता च, कुल-मार्ग-प्रवर्धिनी ।।
श्मशान-भैरवी काल-भैरवी भैरवी-प्रिया। आनन्द-भैरवी ध्यान-भैरवी पुर-भैरवी ।।
महा-भैरव-पत्नी च, भैरवी लोक-भैरवी। सु-विद्या-भैरवी नीति-भैरवी गुण-भैरवी ।।
सम्मोह-भैरवी पुष्टि-भैरवी तुष्टि-भैरवी। सृष्टि-स्थिति-भैरवी च भैरवी स्थिति-भैरवी ।।
पुण्डरीकाक्ष-गृहिणी, पुण्डरीकाक्ष-वल्लभा। आनन्द-सुन्दरी वीर-सुन्दरी स्थिति-सुन्दरी ।।
आनन्द-सुन्दरी काल-सुन्दरी पुर-सुन्दरी। या माया-सुन्दरी सौम्या, सुन्दरी लोक-सुन्दरी ।।
या विद्या-सुन्दरी नीति-सुन्दरी गुण-सुन्दरी। मल्लिका-हार-रसिका, मल्लिका-हार-शोभिता।।
नव-चम्पक-वर्णाभा, नाग-केशर-शोभिता। जवा-कुसुम-सङ्काशा, जवा-कुसुम-शोभिता ।।

प्रिया प्रियङ्करी विष्णोर्दानवेन्द्र-विनाशिनी । ज्ञानेश्वरी ज्ञान-दात्री, ज्ञानानन्द-प्रदायिनी ।।
गुण-गौरव-सम्पन्ना, गुण-शील-समन्विता । रूप-यौवन-सम्पन्ना, रूप-यौवन - शोभिता ।।
गुणाश्रया गुणवती, गुण-गौरव-सुन्दरी । लसत् - तारा-पति-प्रख्या, ताटङ्क-द्वय-शोभिता ।।
वृक्ष-मूल-स्थिता देवी, वृक्ष-शाखोपरिस्थिता । वृक्ष-मध्याग्र-निलया, वृक्ष-मध्या-निवासिनी ।।
कुमुद्वती कुमुदिनी, कुमुदा कुमुदाकरा । कुसुम्भ-रूप-रुचिरा, कुसुम्भारुण-मस्तका ।।
स्वयंभू-पुष्प-सङ्काशा, स्वयंभू-पुष्प-धारिणी । स्वयंभू-पुष्प-सरसा, मग्ना ध्यानवती सदा ।।
शुक्र-प्रिया शुक्र-रता, शुक्र-मज्जन-तत्परा । पर्णाऽपर्णा सुपर्णा च, निष्पन्ना पाप-नाशिनी ।।
मदिरा मोद-सम्पन्ना, मदिरा मोद-धारिणी । सर्वाश्रया सर्व-गुणानन्द-कन्दल-कारिणी ।।
नारी-पुष्प-सम-प्राणा, नारी-पुष्प-समुत्सुका । नारी-पुष्पोत्सवा नारी-पुष्प-रता मृगी ।।
चतुर्भुजा दश-भुजा, अष्टादश-भुजा तथा । द्वि-भुजा षड्-भुजाऽष्टार-पङ्कजोपरि-संस्थिता ।।
कौवेरी कौरवी कौर्व्या, कुरु-कुल्ला कपालिनी । विपरी कदली जङ्घा, रम्भोरू राम-वल्लभा ।।
निशाचरी निशा-मूर्तिर्निशा-चन्द्र-सम-प्रभा । चान्द्री चन्द्र-कला चन्द्रा, चारु-चन्द्र-सम-प्रभा ।।
स्रोतस्विनी स्रोत-वती, सर्व-दुःखार्ति-नाशिनी । सर्वाधारा सर्व-मयी सर्वानन्द-प्रवर्धिनी ।।
सर्व-चक्रेश्वरी सर्वा, सर्व-मन्त्र-मयी सदा । सहस्र-नयन-प्राणा, सहस्र-नयन-प्रिया ।।
सहस्र-शीर्षा सुषमा, स-दम्भा सर्व-भक्षिका । षष्टिका षट्-सुचक्रस्था, षड्-वर्ग-फल-दायिनी ।।
षड्-विंश-पद्म-मध्यस्था, षड्-विंश-दल-मध्यगा । हकार-वर्ण-निलया, हकाराक्षर-भूषिता ।।
हारिणी हार-वनिता, हार-हीरक-शोभिता । ह्लींकार-बीज-सहिता, हीङ्कारैरुप-शोभिता ।।
कन्दर्पस्य कला कुल्या, कौलिनी कुल-तर्पिता । केतकी-कुसुम-प्राण-केतकी कृत-भूषणा ।।
केतकी-कुसुमासक्ता, केतकी परि-भूषिता । कर्पूर-पूर्ण-वदना, कला-नाथ-सम-प्रभा ।।
कला-केलि-प्रिया कीर्ण, कदम्ब-कुसुमोत्सुका । कादम्बिनी करि-गतिः, कुञ्जरेश्वर-गामिनी ।।
खर्वा च खञ्जन-द्वन्द्व-लोचना खड्ग-भूषिता । खद्योत इव दुर्लक्ष्या, खद्योत इव चञ्चला ।।
गया गदा-गुण-प्रीता, गीत-वाद्य-प्रिया गतिः । गणेश्वरी गणेज्या च, गण-पूज्या गण-प्रदा ।।
गुणाढ्या गुण-सम्पत्तिर्गुण-दात्री गुणात्मिका । गुर्वी गुरु-तरा गौरी, गाणपत्य-फल-प्रदा ।।
घर्मांशु-गृहिणी धर्मा, धर्म-सिन्धु-निवासिनी । घर्घरा घोर-वदना, घोर-दैत्य-विनाशिनी ।।
घोषा घोष-वती घोष्या, घोष-पुत्री वनालया । चर्वरी चारु-नयना, चारु-वक्त्रा चतुर्गुणा ।।
चतुर्वेद-मयी चूर्ण-चन्द्रास्या चतुरानना । चलच्चकोर-नयना, चलत्-खञ्जन-लोचना ।।
चलदम्भोज-वदना, चलदम्भोज-शोभिता । छात्री छत्र-प्रिया छत्रा, छत्र-चामर-शोभिता ।।

छिन्ना छिर्दिछिन्नशिरा, छिन्ननासा छलान्विता । छलाद्या छल-संत्रस्था, छलरूपा छलच्छिरा ।
छकार-वर्ण-निलया, छकाराद्या छल-प्रिया । छद्मिनी छद्म-निरता, छद्मा छद्म-निवासिनी ।।
जगन्नाथ-प्रिया जीवा, जगन्नाथ-रता-जरा । जीर्णा जीमूत-वनिता, जीमूतैरुप-शोभिता ।।
जामातृ-वरदा जृम्भा, जमलार्जुन-धारिणी । जरा जरान्विता जृम्भा, जम्भाराति वर-प्रदा ।।
जिता जयित्री जयदा, जय-दात्री जय-प्रदा, झल्लरा झक्किर्तिझिल्ली झरी झर्झरिका तथा ।।
टङ्कार-कारिणी टीत्का-कारिणी टङ्क-धारिणी । ठक्कुराज्ञा डमरुकरा डात्कारी डमरु-प्रिया ।
ठक्कार-वाद्य-ठक्कारी, तुलसी ताल-भक्षिका । तुला तौलिनिका तीर्णा, तारा तारिणीका तथा ।
तन्त्र-विज्ञा तन्त्र-रता, तन्त्र-विद्या च तन्त्रदा, तान्त्रिका तन्त्र-गोप्या च, तन्त्र-सारा च तन्त्रपा ।
तन्त्र-धात्री तन्त्रकारी, तन्त्र-नारी-रतातुरा । तपः-प्रभावा तन्त्रज्ञा, तन्त्र-सार-फल-प्रदा ।।
तपस्या तौलिनी तार्त्ती, तार्त्तीया तुलसी तुषा । तुषार-कर-पूर्णा स्यात् तुषार-कर-मण्डिता ।।
तुहिनांशु-समाभासा, तुहिनांशु-सम-प्रभा । तुषार-कर-तुल्याङ्गी, तुषार-कर-सुन्दरी ।।
तुषार-धाम-तुल्यास्या, तुषारांशु-समानना । तुहिनाद्रि-सुता तार्क्ष्या, तालाङ्गी ताल-वर्जिता ।।
तार-स्वरेण सहिता, तार-स्वर-विभूषिता । थकार-कूट-निलया, थकाराक्षर-मालिनी ।।
दयावती दीन-रता, दुःख-दारिद्रच-नाशिनी । दौर्भाग्य-दुःख-दलिनी, दौर्भाग्यापद-नाशिनी ।।
दुहिता दीन-बन्धुश्च, दानवेन्द्र-विमर्दिनी । दान-दात्री दान-परा, दान-सम्मान-तोषिता ।।
दाल्भ्यादि-सेविता दान्ता, दामोदर-परायणा । दधीची वरदा दुष्टा, दानवेन्द्र-विनाशिनी ।।
दीर्घ-नेत्रा दीर्घ-कचा, दीर्घ-नासा च दीर्घिका । दारिद्रच-दुःख-शमनी, दुष्टासुर-निषूदिनी ।।
दम्भिका दम्भहा दम्भा, दनुजेन्द्र-विनाशिनी । धन-धान्य-प्रदा धन्या, धनेश्वर-वर-प्रदा ।।
धर्मिणी धर्मिका धर्म्या, धर्माधर्म-प्रवर्धिनी । धर्मेश्वरी धर्म-दात्री, धर्मानन्द-प्रवर्धिनी ।।
धनाध्यक्षा धन-प्रीता, धनाढचा धन-तोषिता । धीरा धैर्यवती धृष्णा, धवलाम्भोज-सन्निभा ।।
धरिणी धारिणी धात्री, धुरीणा धवलास्पदा । धार्मिका धर्म-सहिता, धर्म-निन्दक-वर्जिता ।।
नवीना निरजा निम्ना, निम्न-नाभिर्नगेश्वरी । नूतनाम्भोज-नयना, नवीनाम्भोज-सुन्दरी ।।
नागरी नाग-राजेज्या, नाग-राज-सुता नगा । नाग-राज-पतिर्नग्ना, नाग-राज-विभूषिता ।।
नगेश्वरी नगारूढ़ा, नग-राज-कुलेश्वरी । नवीनेन्दु-कलानन्दा, नन्दिकेश्वर-वल्लभा ।।
नीरजा नीरजाक्षी च, नीरज-द्वन्द्व-लोचना । नीर-सूता नीर-भवा, नीर-निर्मल-देहिनी ।।
नाग-यज्ञोपवीताढचा, नाग-यज्ञोपवीतिका । नाग-केसर-सन्तुष्टा, नाग-केसर-मालिनी ।।

नवीन-केतकी-कुन्द-मन्दार-स्त्रज-भूषिता । नायिका नायक-प्रीता, नायक-प्रेम-तोषिता ।।
नायक-प्रेम-सहिता, नायक-प्रेम-तोषिता । नायकानन्द-निलया, नायकानन्द-कारिणी ।।
नर्म-कर्म-रता निद्रा, नर्म-कर्म-परायणा । नर्म-कर्म-प्रिया नर्मा, नर्म-धर्म-परायणा ।।
नर्म-प्रीता नर्म-रता, नर्म-ध्यान-परायणा । नर्म-कर्मैक-सहिता, नर्म-कर्मैक-पालिका ।।
नर-नारी-गुण-प्रीता, नर-नारी-वर-प्रदा । नारायण-प्रिया निष्का, निष्क-वर्णा नकारहा ।।
पुष्प-प्रिया पुष्प-रता, पौष्पी-पान-परायणा । पुष्प-प्रीता च पुष्पेज्या, पुष्प-दाम-विभूषणा ।।
पुण्यदा पूर्णिमा पुण्या, पुण्य-कोटि-फल-प्रदा । पुराणागम-वेद्या च, पुराणागम-गोपिता ।।
पुराणागम-गोप्या च, पुराणागम-तोषिता । पुराण-गोचरा पूर्वा, पूर्णा प्रोढ़-विनाशिनी ।।
प्रह्लाद-हृदयाह्लाद-गेहिनी पुण्य-चारिणी । फाल्गुनी फाल्गुन-प्रीता, फाल्गुन-प्रेम-धारिणी ।।
फल्गु-फल-प्रदा चैव, फणिराज-विभूषिता । फणाकारा फणि-प्रीता, फणि-हार-विभूषिता ।।
फणीश-कृत-सर्वाङ्ग-भूषणा फणि-वाहिनी । फणि-प्रीता फणि-रता, फणि-कङ्कण-धारिणी ।।
फल-दात्री फलासक्ता- फलाभरण-भूषिता । फकार-कूट-सर्वाङ्गी, फाल्गुनानन्द-वर्धिनी ।।
वासुदेव-रता विज्ञा, विज्ञ-विज्ञान-कारिणी । वीणावती बलाकीर्णा, बाल-पीयूष-रोचिता ।।
बाला वसुमती-विद्या, विद्या-हार-विभूषिता । विद्यावती वैद्यपदा, प्रीता वैवस्वती बलिः ।।
वाणी विलास-करणी, वराङ्गस्था वरानना । विष्णोर्वक्षःस्थलस्था च, वाग्वती विन्ध्य-गेहिनी ।
निवारतरु-संस्था च, नीवार-कुसुमोत्सुका । भीतिहा भयदा भानोरंशु-जाल-सम-प्रभा ।।
भार्गवेज्या भृगोः पूज्या, भारद्वाज-नमस्कृता । भीतिहा भय-सम्पन्ना, भीमाकाराभ्र-सुन्दरी ।।
माया-धरी मान-रता, मान-सम्मान-तत्परा । माधवानन्ददा माध्वी, मदिरा मदिरेक्षणा ।।
महोत्साह-गुणोपेता, महती महदुद्भूता । मदिरा मोद-रमिता, मदिरामज्जने रता ।।
यशोधरी यशो-विद्या, यशोदानन्द-वर्धिनी । यशः-कर्पूर-धवला, यशो-दाम-विभूषणा ।।
यम-राज-स्वसा योग-मार्गानन्द-प्रवर्धिनी । यादवानन्द-करिणी, यादवानन्द-वर्धिनी ।।
यज्ञ-प्रीता यज्ञ-मयी, यज्ञ-कर्म-विभूषणा । राम-प्रिया राम-रता, राम-तोषण-तत्परा ।।
राज्ञी राज-कुलेज्या च, राज-राजेश्वरी रमा । रमणी रामणी रम्या, रामानन्द-प्रदायिनी ।।
रजनी-कर-पूर्णा स्याद् रक्तोत्पल-विलोचना, लाङ्गली प्रेम-सन्तुष्टा, लाङ्गली-प्रणय-प्रिया ।।
लाक्षारुणा च ललना, लीला लीलावती लया । लङ्केश्वर-गुण-प्रीता, लङ्केश-वर-दायिनो ।।
लवङ्ग-कुसुम-प्रीता, लवङ्ग-कुसुम-स्त्रजा । बाला विवस्वद्-गृहिणी, विवस्वत्-प्रेम-धारिणी ।।
शवला शरला शल्या, शरण्या श्रीः शरद्गुणा, षट्कोण-चक्र-मध्यस्था सम्पदा ह्री-विशोभिता ।

क्षेमा अम्बा तथाज्ञा च, इड़ा ईश्वर-वल्लभा, उग्राख्या च तथा चोर्णा, ऋ-कारा ऋस्वरोद्भवा ।
लृ-कार-वर्ण-कूटस्था, लृ-कार-स्वर-भूषिता । ए-कार-वर्ण-कूटस्था, ए-कार-स्वर-भूषिता ।।
एष्या चैष्या तथा चोषा, औकाराक्षर-रूपिणी । अंसा अकार-वनिता, सर्वागम-सुगोपिता ।।

।। फल-श्रुति ।।

य इदं पठते स्तोत्रं, प्रत्यहं भक्ति-संयुतः । दिवा रात्रौ तथा सन्ध्या-समये स महेश्वरः ।।
स्तव-मात्रस्य पाठेन, राजा किङ्करतामियात् । सर्वागमेषु पूज्यः स्यात्, सर्व-तन्त्रे स्वयं हरः ।।
शिव-स्थाने च शय्यायां, शून्यागारे चतुष्पथे । यः पठेच्छृणुयाद् वापि, स योगी नात्र संशयः ।
यानि नामानि सन्त्यस्मिन् प्रसङ्गान् मुर-वैरिणः, ग्राह्यानि तानि कल्याणि, नान्यानि तु कदाचन
हरेर्नाम न गृह्णीयान्न स्पृशेत् तुलसी-दलं । नान्य-चिन्ता प्रकर्त्तव्या, नान्य-निन्दा कदाचन ।।
सिन्दूर-करवीराद्यैः, पुष्पैर्लोहितकैः शुभां । योऽर्चयेद् भक्ति-भावेन, तस्याऽसाध्यं न किञ्चन ।।
वात-स्तम्भं जल-स्तम्भं, गति-स्तम्भं विवस्वतः, वह्नेः शैत्यं करोत्येष, स्तवस्यास्य च कीर्त्तनात्
स्त्रियमाकर्षयेत् तूर्णमरीन् मर्दयति हठात् । मोहयेद् राज-दाराश्च, देवानपि वशं नयेत् ।।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि, एक-चित्तेन सर्वदा । स दीर्घायुः सुखी वाग्मी, वाणी तस्य वशङ्करी ।।
सर्व-तीर्थाभिषेकेन, गया-श्राद्धेन यत् फलं । तत् फलं सकलं तस्य, यः पठेदेक-चित्ततः ।।
येषामाराधने श्रद्धा, ये च साधितुमुद्यताः । तेषां कृतार्थं सर्वत्र, गतिर्देवी-पदालये ।।
ऋतु-युक्त-लता-मध्ये स्थित्वा दण्डेन ताड़येत् । जप्त्वा स्तुत्वा च भक्त्या च गच्छेद्वै तारिका-पदं ।।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, नवम्यां शनि-वासरे । संक्रान्तौ मङ्गले रात्रावमावस्यायां योऽर्चयेत् ।।
वर्षं वाप्य तु देवेशि तस्याधीनाश्च सिद्धयः । मृत-पुत्रा च या नारी, मृत-गर्भा च याऽङ्गना ।।
मृत-पत्या च या नारी, दौर्भाग्य-पद-पीड़िता । बन्ध्या च काक-बन्ध्या च, मृत-पुत्रा च याऽङ्गना ।
धन-धान्य-विहीना च, रोग-शोकाकुला च या । ताभिरेतन् महा-देवि ! भूर्ज-पत्रे लिखापयेत् ।।
सव्ये भुजे च बध्नीयात्, सर्व-सौख्य-वती भवेत् । एवं पुमानपि प्रायो, दुःखेन परिपीड़ितः ।।
सभायां व्यसने घोरे, विवादे शत्रु-सङ्कटे । चतुरङ्गे तथा युद्धे, सर्वत्रापद-पीड़िते ।।
स्मरणादस्य कल्याणि, संक्षयं यान्ति दूरतः । पूजनीया प्रयत्नेन, शून्यागारे शिवालये ।।
विल्व-वृक्ष-तले देवि ! सर्वदा कुल-मण्डले । शर्करासव-संयुक्तैर्भक्तैर्दुग्धैः स-तण्डुलैः ।।
अपूप-पिष्ट-संयुक्तैर्नैवेद्यैश्च यथोचितैः । निवेदितं च यद् द्रव्यं, भोक्तव्यं चावधानतः ।।
न चेत् तद् भुज्यते मोहाद्, भोक्तुं नृत्यन्ति देवताः । अनेनैव विधानेन, योऽर्चयेत् परमेश्वरीम् ।।

स भूमि-मण्डले देवि ! साक्षादीशो न संशयः । महा-शङ्खेन कल्याणि, सर्वं कार्यं जपादिकम् ।।
कुल-सर्वस्वकस्यैव, प्रभावो वर्णितो मया । न शक्यते समाख्यातुं, वर्ष-कोटि-शतैरपि ।।
किञ्चिन्मयाऽपि चापल्यात्, कथितं परमेश्वरि ! जन्मान्तर-सहस्रेण, कथितुं नैव शक्यते ।।
कुलीनाय प्रदातव्यं, तारा-भक्ति-पराय च । अन्य-भक्ताय नो देयं, वैष्णवाय विशेषतः ।।
कुलीनाय महेच्छाय, भक्ति-श्रद्धा-पराय च । महात्मने सदा देयं, परीक्षित-गुणाय च ।।
नाऽभक्ताय प्रदातव्यं, पन्थान्तर-रताय च । न देयं देव-देवेशि ! गोप्यं सर्वागमे सदा ।
पठनीयं सदा देवि ! सर्वावस्थासु सर्वदा ।।

यः स्तोत्रं कुल - नायकं प्रतिदिनं भक्त्या पठेन्मानवः,
स स्याद् वित्तचयैर्धनेश्वर-समो विद्या - भवैर्वाक् - पतिः ।
सौन्दर्येण च मूर्ति-मान् मनसिजः कीर्त्या च शीत-द्युतिः,
शक्त्या शङ्कर एव शौर्य-विभवैर्भूमि-पतिर्नान्यथा ।।

।। श्रीहर-गौरी-सम्वादे तारायाः 'भक्ति-कुल-सर्वस्वं' नाम स्तोत्रम् समपूर्णं ।।

## ब्रह्म-तारा

एक ब्रह्म-तारा है अनादि सर्वज्ञा, वाहि नेति हम नेतीति बतावें वेद-धारा में ।
वही विष्णु अज ईश होकर प्रकाश-पुञ्ज, रचो विस्तार भव जिनें पुंस-दारा में ।
लोमश विशिष्ट निज भक्त-हित हंस-वंश, भई नर-नारी श्रीविदेह-परिवारा में ।
'तारानन्द' कहे सा है सीता-राम तारा, ताते मेरे मन भेद नाहीं सीता-राम तारा में ।। १
घोर श्मशान-जग ज्वलित-चिता के मध्य, उमा-पति प्रेत प्रत्यालीढ़-पद-वारी है ।
एक कर खप्पर अरु कर्तृ कर दूसरे में, तीसरे में देखो खूब खूनी खड्ग-वारी है ।
चौथे कर नील वर राजत कमल फूल, तुर्य धर्म-मूल मूल-थूल अङ्ग-वारी है ।
तारक वितारा तार सार अवतार यार, चार भुज-वारी सा हमारी रखवारी है ।। २
वेद अरु वेद के भेद अनेकहि, भावना-भाव भवा-भव सारूँ ।
एक विवर्त बिना सब वाद का, कारण वानन कानन धारूँ ।
केवल केवल - केवल होकर, काल कलेवा करा उर धारूँ ।
जो कुछ है धरणी बरनी फिर, तारिणी नाम के ऊपर वारूँ ।। ३

—'ब्रह्मीभूत' पूज्य श्री स्वामी तारानन्द जी, तारापुर, बैजनाथ, जिला काङ्गडा (हि. प्र.)

# भगवती तारा का दुर्लभ हस्त-लिखित साहित्य

[शक्ति के प्रमुख दस स्वरूप 'दश महा-विद्याओं' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें द्वितीय स्थान भगवती तारा को प्राप्त है। इन्हें द्वितीया भी कहते हैं। भगवती तारा की उपासना पर प्रकाश डालने वाला साहित्य प्रचुर रूप में संस्कृत में लिखा गया है। खेद की बात है कि अधिकांश साहित्य हस्त-लिखित अवस्था में ही प्राप्त है। यहाँ दुर्लभ हस्त-लिखित तारा-साहित्य का विवरण 'तान्त्रिक-साहित्य' के आधार पर प्रकाशित किया जा रहा। इन पाडुलिपियों को एक स्थान पर संग्रह करके भगवती तारा का एक शोध-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता है।--सं०]

१ तारा कर्पूर स्तोत्र—प्रकाशित।

२ तारा-कल्प--कैट्, कैट्, १।२२६।

३ तारा-कल्प-लता--नारायण भट्ट विरचित—कैट्, कैट्, १।२२६।

४ तारा-कल्प-लता पद्धति--विद्यानन्द (श्री निवास) शिष्य नित्यानन्द (नारायण भट्ट) विरचित, श्लोक-संख्या ३४०, अपूर्ण-र. मं. ४८८१।

५ ताराऽक्षोभ्य-सम्वाद—श्लोक ३००। इसमें तारा देवी का माहात्म्य वर्णित है--रा. ला. ३६१

६ अक्षोभ्य-तारा सम्वाद--कैट्, कैट्, १।२२६

७ तारा-तत्त्व---कैट्, कैट्, १।२२६।

८ तारा-तन्त्र--(१) पञ्चाक्षर उग्रतारा-महामन्त्र का माहात्म्य, बुद्ध-रूपी जनार्दन द्वारा अनुष्ठित प्रातः-कृत्यों का निरूपण, विविध पूजाओं में मानसिक और यान्त्रिक पूजा-विधि, कुलाचार आदि का प्रतिपादन, पुरश्चरण-निरूपण आदि।—नो. सं. १।१४६।

(२) तारा की पूजा आदि। छः पटलों में पूर्ण—क. का. ७६ (ङ)।

(३) तारा की पूजा-विधि--बी. कै. १३५५।

(४) छः पटलों में पूर्ण—बं. प. १३६८।

(५) श्लोक १५०। छः पटलों में। राजशाही की वीरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी द्वारा प्रकाशित, सन् १६१३—ए. वं० ५६२६।

(६) श्लोक १६६। अपूर्ण--सं. वि. २४४७०।

(७) श्लोक १६८। पूर्ण—सं. वि. २४७२६।

(८) छः पटलों में पूर्ण- कैट्, कैट्, ३।४६।

६ तारा-पञ्चाङ्ग—(१) श्लोक १३००, पूर्ण। १ तारा सहस्रनाम, २ तकारादि तारा सहस्रनाम, ३ मन्त्र-सिद्धि का उपाय, ४ होम, ५ तारा-पटल, ६ तारा-स्तव, ७ तारा-कवच, ८ स्तोत्र, ६ भूत-शुद्धि, भू-शुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका-न्यास, बहिर्मातृका-न्यास—ए. बं. ६३३१।

(२) तारा देवी की महिमा—१ तारा पटल, २ तारा-पूजा पद्धति, ३ तारा-सहस्रनाम (तारार्णवीय), ४ त्रैलोक्य-मोहन तारा-कवच (भैरवी-तन्त्रोक्त), ५ महोग्रतारा-स्तव-राज (तारा-कल्पीय)—नो. सं. २।८२।

(३) श्लोक ३००, अपूर्ण—अ. ब. १२८१६।

(४) श्लोक १०००, पूर्ण—र. मं. ३४६३।

(५) श्लोक १०००, पूर्ण—र. मं. ४८२६।

(६) रुद्र-यामलान्तर्गत, श्लोक २०८—सं. वि. २५४४०।

(७) रुद्र-यामलान्तर्गत, श्लोक ५१२—सं. वि. २६४२२।

(८) नरसिंह-कृत—कैट्, कैट्, १।२२६।

१० तारा-पटल—(१) श्लोक ७२, अपूर्ण—सं. वि. २४५६४।

(२) कैट्, कैट्, १।२२६।

११ तारा-पद्धति--(१) श्लोक ६००, पूर्ण—ए. बं. ६३३३।

(२) श्लोक ६००, पूर्ण—अ. ब. ६००६।

(३) श्लोक ३००, अपूर्ण—अ. ब. ६६६७।

(४) नारायण-कृत--कैट्, कैट्, १।२२६।

१२ तारा-पूजन-वल्लरी—कैट्, कैट्, १।२२९ ।

१३ तारा-पूजा-पद्धति--(१) तारा-भक्ति-सुधार्णव से संग्रहीत—नो. सं. १।१४७ ।

(२) श्लोक ५७६, प्रातः-कृत्य से लेकर जप-रहस्य तक—सं. वि. २६४४३ ।

(३) श्लोक ८७०, पूर्ण--सं. वि. २६५८१ ।

(४) श्लोक ५४७, अपूर्ण—सं. वि. २४७९९ ।

(५) श्लोक ३१४, अपूर्ण—सं. वि. २५१४५ ।

(६) श्लोक २४४, अपूर्ण—सं. वि. २६६२३ ।

(७) कैट्, कैट्, १।२२९ तथा २।४८ ।

१४ तारा-पूजा-प्रयोग--अपूर्ण—ए. बं. ६३३४ ।

१५ तारा-पूजा-रसायन—भद्रोपनामक जयराम भट्ट पुत्र काशीनाथ कृत, श्लोक २८०, पूर्ण—ए. बं. ६३३० ।

१६ तारा-प्रदीप (१) लक्ष्मण-देशिक विरचित, श्लोक १२६०, पाँच पटलों में पूर्ण—ए. बं. ६३२२

(२) छः पटलों में पूर्ण—नो. सं. ३।१२८ ।

(३) लक्ष्मण-देशिक कृत, अपूर्ण—बं. प. १३९३

(४) लक्ष्मण-देशिक कृत । ५ पटलों में पूर्ण । प्रथम पटल में मन्त्र-साधना का विवरण । द्वितीय पटल में पूजा - सङ्केत । तृतीय में मन्त्र - सङ्केत । चतुर्थ में साधन-सङ्केत एवं पञ्चम पटल में विभिन्न मन्त्र प्रतिपादित हैं । रा. ला. २३६ ।

(५) श्लोक ९००, ५ पटलों में पूर्ण । प्रथम पटल में गुरु-शिष्य-लक्षण । द्वितीय में पूजा, ज्ञान आदि का प्रतिपादन । तृतीय में तारा महा - विद्या की १३ अवान्तर महा-मूर्तियों का निरूपण । चतुर्थ में मारण, उच्चाटन प्रयोग । पञ्चम पटल में मन्त्र-साधना के विविध प्रभेदों का वर्णन । रा. ला. २८४ ।

(६) पाँच पटलों में । शाक्तों के सिद्धान्त, आचार, नियम (जो तारा - पूजन में आवश्यक हैं) का वर्णन । कर्त्ता—लक्ष्मण देशिक । बी. क. १३५२ ।

१७ तारा - भक्ति - तरङ्गिणी—(१) कीर्तिकर, तत्पुत्र हरिहर, तत्पुत्र रुचिकर, रुचिकर - प्रपौत्र, श्रीकृष्ण-पौत्र, गदाधर - पुत्र नरसिंह कृत । श्लोक ११,२०४, २२ तरङ्गों में पूर्ण । मुख्य वर्णित विषय हैं—मन्त्र-माहात्म्य-वर्णन, मन्त्रोद्धार - प्रकार आदि, गुरु और शिष्य के लक्षण, दीक्षा - विधि, दीक्षा के लिए देश, काल आदि का निरूपण, वास्तु-याग-विधि, कलावती और वेध-मयी दीक्षाएँ, पूर्णाभिषेक, समयाचार, यन्त्र आदि कथन, दिव्य, वीर और पशु - भाव का निरूपण, नित्य - कर्म - विधि, विविध न्यास, मन्त्रादि की शुद्धि, तारा-गुरु-निरूपण, तत्त्व - शुद्धि, बटुक के लिए बलिदान आदि, आवाहन, तारा-ध्यान, उपचार-विधि, पाँच प्रकार की महा-मुद्राएँ, विविध मुद्राएँ, आवरण-पूजा, बलिदान, नित्य-होम, पञ्चम याग-विधि, कुमारी - पूजा आदि । रा. ला. ३३१२ ।

(२) नृसिंह ठक्कुर कृत । इसमें तारा या तारिणी देवी का पूजन-क्रम निर्दिष्ट है । इसमें आठ तरङ्ग हैं । इ. आ. २५९६ ।

(३) गदाधर-शिष्य नरसिंह ठक्कुर कृत । इसमें आठ तरङ्ग हैं । दीक्षा - विधि, विविध दीक्षाएँ, उनके उपयोगी काल—मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न का निर्णय आदि । ए. बं. ६२२६ ।

(४) यह तन्त्र-ग्रन्थ रुद्र - यामल, तत्त्व - बोध, तन्त्र-चूड़ामणि, मत्स्य-सूक्त, तारार्णव आदि ग्रन्थों का अवलोकन कर संग्रहीत है । इसमें ग्यारह तरङ्ग हैं । क. का. ३१, ३ ।

(५) इसमें तारा की पूजा से सम्बन्ध रखनेवाले विविध मन्त्र, मुद्रा, न्यास, ध्यान आदि विविध विषय वर्णित हैं । बी. कै. १३५१ ।

(६) ठक्कुर श्री नरसिंह कृत—ग्यारह तरङ्ग—अ. ब. ८१२७, बारह से पन्द्रह तरङ्ग—९१४३, अपूर्ण—१०२००, बारहवीं तरङ्ग मात्र—१०७८२, तरङ्ग ७ से १०—१०६१६ ।

(७) नरसिंह ठक्कुर कृत--अपूर्ण--सं. वि. २४९८६, २४१८५, २६२१३, २६२१४ ।

(८) गदाधर-पुत्र नरसिंह विरचित—बीस तरङ्गों में पूर्ण—कैट्, कैट्, २१४८ ।

१८ तारा - रहस्य—(१) ब्रह्मानन्द परमहंस विरचित—प्रमुख वर्णित विषय हैं—प्रातः - कृत्य, मन्त्रोद्धार, शिव-लिङ्ग - पूजा, होम, जप, तत्त्वादि का रहस्य, पुरश्चरण आदि का निरूपण तथा एक-जटा के स्तोत्र, कवच आदि । नो. सं. ११४८ ।

(२) ब्रह्मानन्द गिरि, पूर्ण—ज. का. १०२७ ।

(३) ब्रह्मानन्द परमहंस, सं. वि. २६३९३, २५६६६, २६३१५, २६३९४।

(४) ब्रह्मानन्द कृत—कैट्, कैट्, ३१४९ ।

१९ तारा-रहस्य (ब)—(१) श्री किशोर पुत्र श्री राजेन्द्र शर्मा द्वारा विरचित—२२ परिच्छेदों में पूर्ण । प्रातः-कृत्य, गुरु-स्तोत्र, स्नान आदि, स्थान-शुद्धि, प्राणायाम-विधि, भूत-शुद्धि, काल-पुरुष आदि का विवेचन, अर्घ्य - शोधन का विशेष निरूपण, देवी - पूजा का निरूपण, पूजा में पुष्प आदि का विचार, तारा - स्तोत्र आदि विषय वर्णित हैं। नो. सं. २१८३ ।

(२) राजेन्द्र शर्मा विरचित—कैट्, कैट्, ३१४९

२० तारा-रहस्य-वृत्तिका—(१) लम्बोदर-पौत्र कमलाकर-पौत्र गौडीय शङ्करागमाचार्य विरचित । नित्य - पूजा में प्रमाण, दीक्षा - विधि, पुरश्चरण, नैमित्तिक कर्म का निर्णय, काम्य - निर्णय, रहस्य-निर्णय, कुमारी-निर्णय, पुरश्चरण-रहस्य, देवी के मन्त्र और विद्या का निर्णय, देवी - स्तोत्र, देवी-माहात्म्य, सम्यग् भावों का निर्णय, नित्य - पूजा-प्रयोग, होम - विधि तथा मन्त्रों का वासना - तत्त्व-निर्णय आदि । इ. आ. २६०३ ।

(२) तारा देवी की पूजा । पूर्ण- ए. बं. ६३२ ।

(३) गौड़-देशीय श्री शङ्कराचार्य विरचित—ने. द. १।१०७६ ।

(४) गौड़-भूमि-निवासी श्री शङ्कराचार्य विरचित' इसका नामान्तर 'वासना-तत्त्व-बोधिनी' है । इसमें तारा के पूजनादि विषय वर्णित हैं। रा. ल. ५१२ ।

(५) श्री शङ्कराचार्य विरचित टीका। यह पूरे १५ पटलों पर व्याख्या है । वी. के. १३५३ ।

(६) बं. प. १०८, ७३२, १२६८ ।

(७) क. का. ३३, ७६(३) ।

(८) अ. ब. १७००, २९२ ।

(९) र. मं. ४९६५, ४९७३ ।

(१०) शङ्कराचार्य विरचित—सं. वि. २३९३९, पूर्ण ।

(११) कैट्, कैट्, २१४८, १।२२९, ३१४९ ।

२१ तारार्चन—कैट्, कैट्, १।२२९ ।

२२ तारार्चन - कल्प - वल्ली—अपूर्ण । सं. वि. २६२५९ ।

२३ तारार्चन-चन्द्रिका—जगन्नाथ भट्टाचार्य विरचित । पूजा - पद्धति एवं प्रातः - कालीन देवी-ध्यान आदि कृत्य । ए. बं. ६३२६ ।

२४ तारार्चन-तरङ्गिणी—राम-कृति विरचित । अपूर्ण । ए. बं. ६३२९ ।

२५ तारा - विलासोदय—(१) वासुदेव कवि-कङ्कण चक्रवर्ती कृत । दस उल्लासों में तारा-पूजा विस्तार से प्रतिपादित है । ए. बं. ६३२७ ।

(२) वासुदेव कवि-चक्रवर्ती कृत । दस उल्लासों में प्रतिपादित विषय हैं—तारा - देवी के पूजन का फल, मन्त्र, वासना और काल का विचार, तारा-पूजन का क्रम, पुरश्चरण-विचार, होम-यज्ञ-विधि, तारा-मन्त्र के न्यास का प्रकार, तारा-स्तोत्र-विवेक, तारा-मन्त्र-न्यास, तारा-कवच, सिद्ध-विद्या, शिवा-बलि आदि का विवरण, तारा के विषय की अथर्व-श्रुति का विवरण आदि । रा. ल. १६०२ ।

(३) दस उल्लासों में पूर्ण । 'चीन-क्रम-मन्त्र-वारिधि' के आधार पर वासुदेव कवि-कङ्कण चक्र-वर्ती विरचित यह ग्रन्थ तारा की उपासना का प्रति-पादक है । क. का. ३० ।

२६ तारा-विशेष प्रकरण—कैट्-कैट् १।२२९ ।

२७ तारा-सहस्र-नाम-व्याख्या-लक्ष्मीधर पुत्र विश्वेश्वर विरचित-कैट्-कैट् २।४८ ।

२८ तारा-सहस्र -नाम -स्तोत्र-बाला-विलास-तन्त्रान्तर्गत इसमें तारा के तकारादि सहस्र-नाम हैं। कुछ स्तकारादि भी दीख पड़ते हैं।-ए. ब. ६६६३६५।

२९ तारा-सूक्ति या तारा-सूक्त-(१) शक्ति-सङ्गम-तन्त्रान्तर्गत । अपूर्ण-अ. ब. ६८६८ ।

(२) शक्ति-सङ्गम-तन्त्रान्तर्गत । पूर्ण-सं. वि. २३९३६ ।

(३) तारा-स्तुति-रूप-बी. कै. १३५४ ।

३० तारिणी तारक ब्रह्म-कूटाष्टोत्तर-शतसहस्र-नाम-स्तोत्र-राज-नील-तंत्र, उत्तर-खण्ड के अन्तर्गत । इसमें तारा देवी के तकारादि अष्टोत्तर और सहस्र-नाम वर्णित हैं । नो. सं. ३।१२९ ।

३१ तारिण्यष्टक--श्रीरामजय कृत तारा माहात्म्य ।-नो. सं. १।१४९ ।

३२ तारैकजटार्चन-पद्धति-पूर्ण । सं. वि. २६५८० ।

**ऊपर वर्णित संक्षिप्त नामों का परिचय**

१. कैट् कैट् = कैटलागस कैटोलोगोरम्
२. र. मं. = रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, जम्मू
३. रा. ला. = राजेन्द्र लाल मित्र कृत संस्कृत-पुस्तकों का विवरण
४. नो. सं. = म० म० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संस्कृत विवरण
५. क. का = कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय
६. बी. कै. = बीकानेर महाराजा पुस्तकालय, बीकानेर
७. बं. प. = वङ्गीय साहित्य परिषद् कलकत्ता
८. एं बं. = एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता
९. सं. वि. = सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
१०. अ. ब. = ओरियण्टल इंस्टीचूट, बड़ौदा
११. इं. आ. = इण्डिया आफिस पुस्तकालय, लन्दन
१२. ज. का. = जम्मू कश्मीर का महाराजा के निजी पुस्तकालय
१३. ने. द. = नेपाल दरबार पुस्तकालय, काठमाण्डू, नेपाल

# श्रीकाली-स्तव-मञ्जरी

मूल्य २०-०० रु०

# श्रीश्रीविद्या-स्तव-मञ्जरी

मूल्य २५-०० रु०

# श्रीभुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी

मूल्य १५-०० रु०

# भगवती दुर्गा के सहस्त्रनाम

(शिव-तोषिणी टीकासहित)

मूल्य १०-०० रु०

# सविधि श्रीबाला-खड्ग माला

मूल्य ८-०० रु०



SVB Li
S.No.-
Subject
Sub. Co